भाग ८

# अमृतवाणी

## गूढ़ पदों के सन्देश

स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी महाराज

।। ॐ नमः सद्गुरुदेवाय ।।

# अमृतवाणी

## सन्तों के गूढ़ पदों के सन्देश

## भाग – ८

पूज्य स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी महाराज के
मुखारविन्द से निःसृत अमृतवाणियों का संकलन

लेखक–
**स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी महाराज**
श्री परमहंस आश्रम, शक्तेषगढ़, जिला– मीरजापुर
उत्तर प्रदेश, भारत

प्रकाशक :
**श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट**
**न्यू अपोलो स्टेट, गाला नं- ५ और ११ , मोगरा लेन (रेलवे सब वे के पास)**
**अंधेरी (पूर्व),मुंबई - ४०००६९, भारत. दुरध्वनी- (०२२) २८२५५३००.**

प्रकाशक
**श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट**
**न्यू अपोलो स्टेट, गाला नं. ५ और ११,**
**मोगरा लेन (रेल्वे सब-वे के पास),**
**अंधेरी (पूर्व), मुंबई - ४०००६९, भारत.**
**दुरध्वनी - ०२२-२८२५५३००**
**ई-मेल** - contact@yatharthgeeta.com
**वेबसाइट** - www.yatharthgeeta.com

© लेखक **श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी महाराज**

**संस्करण : - मई, सन् २०२३ - ५,००० प्रतियाँ**

मूल्य : रु.**१००/- मात्र**

मुद्रक :
**जॅक प्रिण्टर्स प्रा. लि.**
जॅक कम्पाऊण्ड, दादोजी कोंडदेव क्रॉस लेन
भायखळा (पूर्व), मुंबई - 400 027, भारत
फोन नं - (0091-22) 2377 2222
वेबसाइट - www.jakprinters.com

**ISBN 978-81-932619-8-9**

अनन्तश्री विभूषित,

योगिराज, युग पितामह

**परमपूज्य श्री स्वामी परमानन्द जी**

श्री परमहंस आश्रम अनुसुइया-चित्रकूट

**के परम पावन चरणों में**

**सादर समर्पित**

**अन्तःप्रेरणा**

# गुरु-वन्दना

**।। ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान् की जय ।।**

जय सद्गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।
निर्गुण निर्मूलं, धरि स्थूलं, काटन शूलं भवभारी।।

सूरत निज सोहं, कलिमल खोहं, जनमन मोहन छविभारी।
अमरापुर वासी, सब सुख राशी, सदा एकरस निर्विकारी।।

अनुभव गम्भीरा, मति के धीरा, अलख फकीरा अवतारी।
योगी अद्वैष्टा, त्रिकाल द्रष्टा, केवल पद आनन्दकारी।।

चित्रकूटहिं आयो, अद्वैत लखायो, अनुसुइया आसन मारी।
श्री परमहंस स्वामी, अन्तर्यामी, हैं बड़नामी संसारी।।

हंसन हितकारी, जग पगुधारी, गर्व प्रहारी उपकारी।
सत्-पंथ चलायो, भरम मिटायो, रूप लखायो करतारी।।

यह शिष्य है तेरो, करत निहोरो, मोपर हेरो प्रणधारी।
जय सद्गुरु.....भारी।।

।। ॐ ।।

"आत्मने मोक्षार्थं जगत् हिताय च"

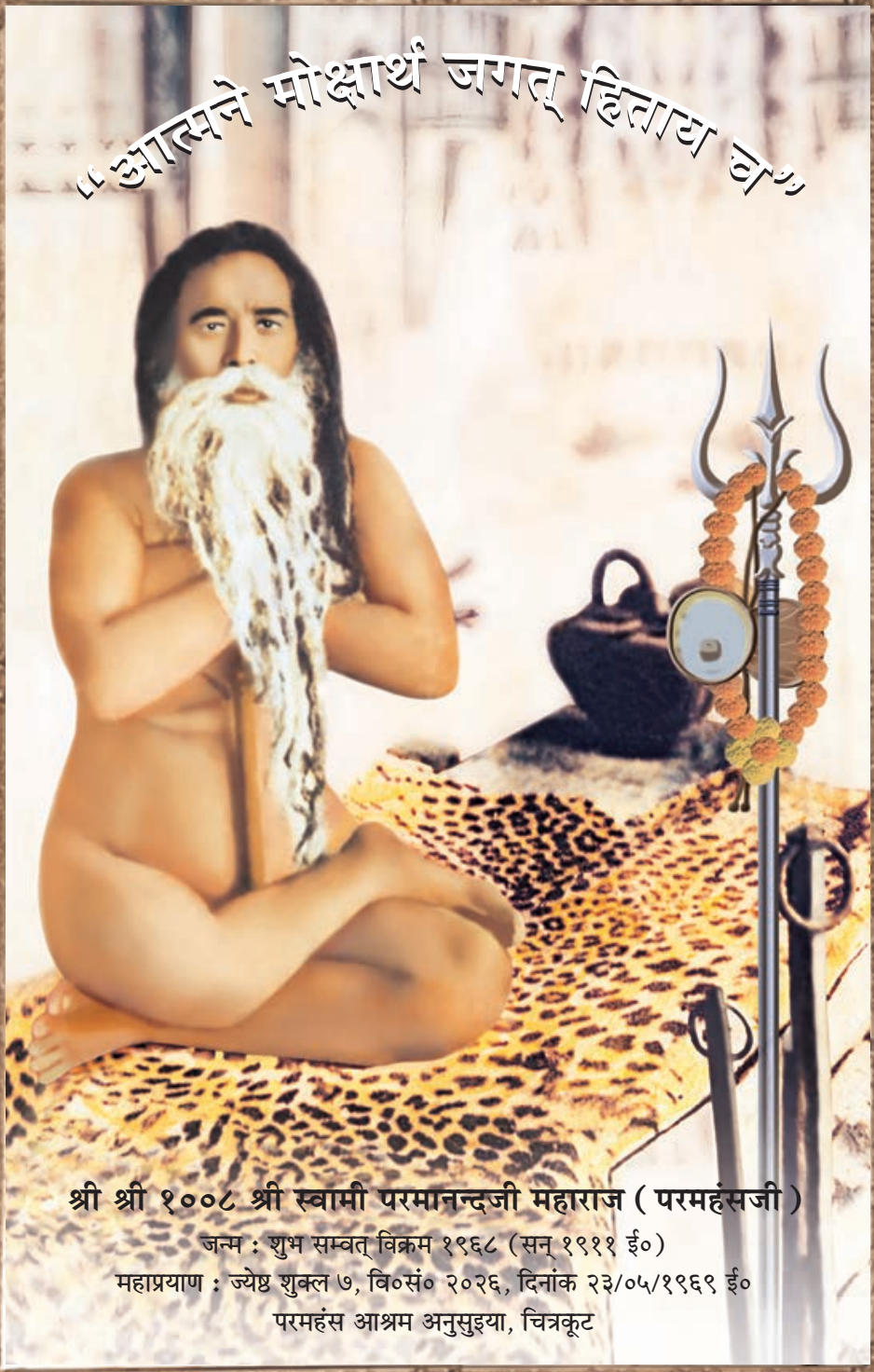

**श्री श्री १००८ श्री स्वामी परमानन्दजी महाराज ( परमहंसजी )**

जन्म : शुभ सम्वत् विक्रम १९६८ (सन् १९११ ई०)

महाप्रयाण : ज्येष्ठ शुक्ल ७, वि०सं० २०२६, दिनांक २३/०५/१९६९ ई०

परमहंस आश्रम अनुसुइया, चित्रकूट

**श्री स्वामी अड़गड़ानन्दजी महाराज**

(परमहंस महाराज का कृपा-प्रसाद)

# निवेदन

कुशलतापूर्वक जीवनयापन मात्र से चिन्तनशील मानव को शान्ति नहीं मिलती। शान्ती की शोध में वह भौतिकता से अध्यात्म की ओर उन्मुख होता है। इसके लिए वह यत्र-तत्र होते हुए सद्गुरु की शरण में जाता है और साधनात्मक निर्देश प्राप्त करता है। गुरु महाराज के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन के लिए तथा निर्देशों के पालन में हुई भूलों का परिमार्जन करने के लिए गुरुपूर्णिमा का पावन पर्व साधकों तथा भक्तों द्वारा मनाया जाता है।

गुरु महाराज के प्रति श्रद्धा-निवेदन के क्रम में आरती की परम्परा है। अपने परमहंस आश्रम में प्रचलित आरती का अर्थ क्या है?, गुरु महाराज की सेवा कैसे की जाय?, मंत्र क्या है?, पिण्डदान का औचित्य क्या?, दीन कौन? भगवान शिव का वास्तविक स्वरूप क्या है? इत्यादि..... साधकों और भक्तों की ओर से पूछे गये इन प्रश्नों का स्पष्टीकरण पूज्य स्वामी जी महाराज ने प्रवचनों के माध्यम से किया है जिनका संकलन प्रस्तुत पुस्तिका है।

**– प्रकाशक**

# अनुक्रमणिका


| *क्रम* | *विषय* | *पृष्ठ संख्या* |
|---|---|---|
| 1. | गुरु पूर्णिमा | 9-25 |
| 2. | आरती का अर्थ | 26-46 |
| 3. | सेवा | 47-65 |
| 4. | गुरुमन्त्र | 66-86 |
| 5. | पिण्डदान | 87-109 |
| 6. | दीन कौन? | 110-122 |
| 7. | शिव तत्त्व | 123-143 |


॥ ॐ ॥

# ॐ

**सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।**
**मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥8/12॥**

सब इन्द्रियों के दरवाजों को रोककर अर्थात् वासनाओं से अलग रहकर, मन को हृदय में स्थित करके (ध्यान हृदय में ही धरा जाता है, बाहर नहीं। पूजा बाहर नहीं होती), प्राण अर्थात् अन्तःकरण के व्यापार को मस्तिष्क में निरोधकर योग-धारणा में स्थित होकर (योग को धारण किये रहना है, दूसरा तरीका नहीं है)–

**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।**
**यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥8/13॥**

जो पुरुष **'ओम् इति'**– ओम् इतना ही, जो अक्षय ब्रह्म का परिचायक है, इसका जप तथा मेरा स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग कर जाता है, वह पुरुष परमगति को प्राप्त होता है।

श्रीकृष्ण एक योगेश्वर, परमतत्त्व में स्थित महापुरुष, सद्गुरु थे। योगेश्वर श्रीकृष्ण ने बताया कि 'ओम्' अक्षय ब्रह्म का परिचायक है, तू इसका जप कर और ध्यान मेरा कर। प्राप्ति के हर महापुरुष का नाम वही होता है जिसे वह प्राप्त है, जिसमें वह विलय है इसलिये नाम ओम् बताया और रूप अपना। योगेश्वर ने 'कृष्ण-कृष्ण' जपने का निर्देश नहीं दिया लेकिन कालान्तर में भावुकों ने उनका भी नाम जपना आरम्भ कर दिया और अपनी श्रद्धा के अनुसार उसका फल भी पाते हैं; जैसा कि, मनुष्य की श्रद्धा जहाँ टिक जाती है वहाँ मैं ही उसकी श्रद्धा को पुष्ट करता तथा मैं ही फल का विधान भी करता हूँ।

**('यथार्थ गीता' से उद्धृत)**

# गुरुपूर्णिमा

गुरुपूर्णिमा साल भर में एक बार आती है। आषाढ़ मास की पूर्णिमा को गुरुपूर्णिमा कहते हैं। यह गुरु और शिष्य के मध्य बहुत ही पावन पर्व है। गुरु महाराज से शिक्षा लेकर दूर-दराज भजन चिन्तन रत साधक तथा पास में रहते हुए सभी साधकों और भक्तों के लिये यह पर्व बहुत ही महत्वपूर्ण है।

केवल प्रसाद पाना गुरुपूर्णिमा नहीं है। गुरुपूर्णिमा इसलिये मनाई जाती है कि गुरु का गुरुत्व शिष्यों में पूर्ण हो जाय। वर्षभर में कितनी प्रगति हुई, कितनी भूलें हुईं–उन सबका परिमार्जन गुरु महाराज के समक्ष हो जाय, साधना का पथ प्रशस्त हो जाय, साधना में तथा गुरु महाराज के प्रति मन में श्रद्धा की जो कमी आयी है, उस कमी की पूर्ति हो जाय। इसलिये गुरुपूर्णिमा का यह पर्व वर्ष भर में हुई कमी को दूर करता है।

साधक को प्राप्त अनुभवों का सूत्र तथा जो साधनात्मक प्रश्न बनते हैं, उनका समाधान प्राप्त करना तथा गुरु महाराज के दर्शन और पूजन के बाद उनसे प्राप्त निर्देशों का पालन करना, पुनः साधना में तत्पर होना, गुरु महाराज से आशीर्वाद प्राप्त करना गुरु पूर्णिमा में मिलनेवाली वस्तुयें हैं।

'गु' कहते हैं अंधकार को, 'रु' कहते हैं प्रकाश को। जो हमें अंधकार अर्थात् मोह से (संसार से) प्रकाश अर्थात् परमात्मा की ओर ले चलें, वह गुरु कहलाते हैं। **'नास्ति तत्वं गुरोः परं'**–गुरु से अधिक कोई परम तत्व नहीं है। जो अविनाशी तत्व है, जिसका कभी विनाश नहीं होता, जो परम तत्व परमात्मा है वही परम गुरु है। जिसने उस परम तत्व परमात्मा की प्राप्ति कर ली, वही परम गुरु है। उसने अपने हृदय में उस गुरुत्व को प्राप्त कर लिया जो सबका मूल तत्त्व है, सत्य है, परमात्मा है। इसलिये सद्गुरु एक स्थिति है, जिनकी संसार भर में पूजा की जाती है।

*** शिव आदि गुरु हैं-**

**तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना। आन जीव पाँवर का जाना॥**

भगवान् शिव आदि योगेश्वर हैं। देवर्षि नारद, महर्षि लोमश, भरद्वाज, याज्ञवल्क्य सबके गुरु भगवान् शंकर ही थे। शंकर आदि सद्गुरु थे। उन आदि योगेश्वर सदगुरु भगवान शिव के प्रति श्रद्धा निवेदन से ही गुरुपूर्णिमा की परम्परा का प्रादुर्भाव है। भगवान् श्रीकृष्ण, नारद सब सद्गुरु की स्थिति वाले महापुरुष थे।

गोस्वामी तुलसीदास जी श्रीरामचरितमानस में कहते हैं–

**भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।**
**याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥**

मैं भवानी और शंकर की वन्दना करता हूँ जो श्रद्धा और विश्वास के रूप हैं। हमें उनमें श्रद्धा करनी है, उनमें विश्वास लाना है। उनके बिना सिद्धजन भी हृदय में स्थित ईश्वर को नहीं जान पाते।

तुलसीदास जी का ईश्वर हृदय में वास करता है, बाहर नहीं। साधारण लोगों की कौन कहे, भजन इतना उन्नत हुआ कि सिद्धस्तर तक पहुँच गये– ऐसे सिद्धजन भी भवानी-शंकर की कृपा के बिना हृदय में स्थित ईश्वर को नहीं पहचान पाते अर्थात् ईश्वर-प्राप्ति का उपाय शंकर और पार्वती में प्रीति है। अब हम उन्हें कहाँ पायें कि उनसे प्रीति करें और ईश्वर हृदय में मिले? अगले ही श्लोक में कहते हैं–

**वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।**
**यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते॥**

**'गुरुं शंकररूपिणम्'**– सद्गुरु शंकरस्वरूप हैं। उनके चरण-कमलों की मैं वन्दना करता हूँ जिनके आश्रित हो जाने पर टेढ़ा चन्द्रमा भी सीधा, परम कल्याणकारी फल देने वाला हो जाता है। **'चन्द्रमा मनसो जातः'** (पुरुषसूक्त), **'मन ससि चित्त महान'**– मन ही चन्द्रमा है। यह टेढ़ा है। यह

कभी काम में, कभी क्रोध में, विविध मोह में, राग-द्वेष में जहाँ-तहाँ छलाँगें भरता ही रहता है। ईश्वर का निवास-स्थल होकर भी यह मल-आवरण-विक्षेप से ढँका हुआ है। सद्गुरु के आश्रय से यह टेढ़ा चन्द्रमा, टेढ़ा चित्त भी परम कल्याणकारी फल देने वाला हो जाता है क्योंकि मन जिस प्रकार सीधा होता है, उस विधि को सद्गुरु बता देते हैं और उस पर चला भी देते हैं। सद्गुरु ही शंकर हैं।

**सिवहि संभु गन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौरु सँवारा।**
**कुंडल कंकन पहिरे ब्याला। तन बिभूति पट केहरि छाला।।**
**ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। नयन तीनि उपबीत भुजंगा।।**
**गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव बेष सिवधाम कृपाला।।**

भगवान् शिव के गणों ने अपने गुरुदेव का शृंगार किया – सर्प पहना दिया, चन्द्रमा जटा में लगा दिया, विभूति लगा दिया, बाघम्बर पहना दिया, खोपड़ी लटका दिया। वह आदिकाल था, कहाँ पावें बढ़िया-बढ़िया चीज। बढ़िया-बढ़िया चीजें भी थीं लेकिन यह त्यागवृत्ति गुरु का सर्वोपरि शृंगार है। कुछ भी हो जाय, त्याग से अलग कभी नहीं होना चाहिए अन्यथा अगली पीढ़ी पर गलत प्रभाव पड़ेगा, सब नष्ट हो जायेंगे। इसलिये भोलेनाथ का शृंगार वैसा ही होता रहा, जैसा एक संत का होना चाहिए। टीप-टाप गृहस्थ, उलूल-जुलूल फकीर!

*** व्यास पूर्णिमा–**

वेदव्यास से पूर्व श्रुतज्ञान की परम्परा थी। उस परम्परा को लेखन से जोड़ते हुए लौकिक, पारलौकिक ज्ञान को महर्षि वेदव्यास ने लिपिबद्ध किया, पुस्तक का आकार दिया। पहले कानों से सुनो और स्मरण रखो, यही थी श्रुति और यही थी स्मृति। इसे व्यासजी ने लिपिबद्ध कर दिया। पुस्तकों की पूर्णता पर शिष्यों ने गुरुदेव की पूजा की थी तभी से गुरुपूर्णिमा प्रचलन में आई। इसलिए इसका नाम व्यास पूर्णिमा भी है।

वेदव्यास ने निर्णय दिया– जो कुछ हमने लिखा है, उनमें शास्त्र कौन?

**गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः।**
**या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।**

गीता भली प्रकार मनन करके हृदय में धारण करने योग्य है, पद्मनाभ भगवान के श्रीमुख से निःसृत वाणी है; **'किमन्यैः शास्त्रसंग्रहै'**– फिर अन्य शास्त्रों के संग्रह की क्या आवश्यकता? अर्थात् आपका धर्मशास्त्र आदिकाल से गीता ही रही है।

एक अन्य श्लोक में है कि–

**एकं शास्त्रं देवकीपुत्र गीतम्**
**एको देवो देवकीपुत्र एव।**
**एको मंत्रस्तस्य नामानि यानि**
**कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा।।**

संसार में केवल एक ही शास्त्र है - देवकीपुत्र भगवान् श्रीकृष्ण ने जो श्रीमुख से गायन किया – गीता। उस गीता में क्या सत्य बता दिया? तो आत्मा। उस परमात्मा को हम कैसे पुकारें? तो ओम्। अर्जुन! ओम् का जप कर और मेरे स्वरूप का ध्यान धर।

हम पूजा किसकी करें? परमदेव कौन? एकमात्र परमात्मा। उन्हें हम कैसे पुकारें? तो मंत्र एक ही है – ओम्। ओम् का जप कर, मेरा ध्यान धर। दुर्लभ मानव तन मिला है तो आपका कर्तव्य-पथ एक ही है– **'कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा'**–गीता में वर्णित उस परमदेव परमात्मा की सेवा। बस उनका सेवन करो।

परमतत्व, परमात्मा और सद्गुरु पर्यायवाची हैं। सद्गुरु सदैव स्थूल शरीर के आधार वाले होते हैं किन्तु सामान्यजन उन्हें पहचान नहीं पाते। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–

**अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।**
**परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्।।** (गीता, 9/11)

सम्पूर्ण भूतों के महान् ईश्वररूप मेरे परमभाव को न जाननेवाले मूढ़लोग मुझे मनुष्य-शरीर के आधारवाला और तुच्छ समझते हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के ईश्वरों का भी जो महान् ईश्वर है, उस परम भाव में मैं स्थित हूँ; किन्तु हूँ मनुष्य-शरीरधारी। मूढ़ लोग इसे नहीं जानते। वे मुझे मनुष्य कहकर सम्बोधित करते हैं। उनका दोष भी क्या है? जब वे दृष्टिपात् करते हैं तो महापुरुष का शरीर ही तो दिखायी पड़ता है।

कैसे वे समझें कि आप महान् ईश्वरभाव में स्थित हैं? वे क्यों नहीं देख पाते?–इस पर कहते हैं–

**मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।**
**राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥** (गीता 9/12)

वे वृथा आशा (जो कभी पूर्ण न हो ऐसी आशा), वृथा कर्म (बन्धनकारी कर्म), वृथा ज्ञान (जो वस्तुतः अज्ञान है), **'विचेतसः'**– विशेष रूप से अचेत हुए, राक्षसों और असुरों के-से मोहित करनेवाले स्वभाव को धारण किये होते हैं अर्थात् आसुरी स्वभाववाले होते हैं इसलिये मनुष्य समझते हैं। असुर और राक्षस मन का एक स्वभाव है, न कि कोई जाति या योनि। आसुरी स्वभाववाले मुझे नहीं जान पाते; किन्तु महात्माजन मुझे जानते और भजते हैं–

**यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।**
**असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥** (गीता 10/3)

जो मुझ जन्म-मृत्यु से रहित, आदि-अन्त से रहित, सब लोकों के महान् ईश्वर को साक्षात्कारसहित विदित कर लेता है, वह पुरुष मरणधर्मा मनुष्यों में ज्ञानवान है अर्थात् अज, अनादि और सर्वलोकमहेश्वर को भली प्रकार जानना ही ज्ञान है और ऐसा जाननेवाला सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है, पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होता। श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह उपलब्धि भी मेरी ही देन है। मैं परम का स्पर्श करके परम भाव में स्थित परमात्मस्वरूप हूँ। मैं अव्यक्त स्वरूप हूँ, शरीर के आधार वाला हूँ। अनन्तकाल से जो महापुरुष होते आये हैं, शरीर के आधार वाले ही हुए हैं।

कबीरदास जी कहते हैं– **'अवधू जीवत में कर आसा'**- जीते जी आप उम्मीद करो। **'मुए मुक्ति गुरु कहे स्वार्थी झूठा दे बिस्वासा।'**- मरने के बाद मुक्ति मिलेगी, ऐसा करो-वैसा करो, तो गुरु जी का कोई स्वार्थ अटका है। ये झूठा विश्वास दिलाते हैं। यह सम्भव नहीं है। जब कभी गुरु के गुरुत्व की स्थिति मिली है तो जीवन-काल में। आदि शंकराचार्य को अठारह वर्ष की आयु में गुरु का गुरुत्व प्राप्त हुआ, उन्हें स्थिति मिल गयी, शिवतत्त्व में स्थिति मिल गयी। पूछा गया कि पूजनीय कौन? आदि शंकराचार्य ने कहा– **'शिवतत्त्वनिष्ठः'**- जो शिवतत्त्व में स्थित है वह महापुरुष। शंकराचार्य ने अपना स्वरूप बताया तो कहा– **'शिवो केवलोऽहम्'–** मैं शिवस्वरूप हूँ अर्थात् यह स्थिति सबके लिए सुलभ है।

भगवान् श्रीकृष्ण भवप्रत्यय योगी के रूप में थे। तीन दिन की साधना शेष रह गयी थी। इस जन्म में तीन दिन ध्यानस्थ रहे और स्थिति पा गये। उल्लेख आता है भागवत में कि पिछले दस जन्म से वे लगातार साधु रहे। एक जन्म में तो आयुपर्यन्त मौन रहे। 'यत्र सायं गृह मुनि' के रूप में भ्रमण करते थे। जहाँ शाम तहाँ घर।

''इस तरीके से दसवें इस जन्म में साक्षात् परब्रह्म परमात्मा आपके साथ हैं। राजन्! विजय आपकी होगी, आप शोक मत करें। ऐसा देवर्षि नारद से सुना है।''–अर्जुन ने युधिष्ठिर को सांत्वना देते हुए कहा। ये वनवास काल का प्रथम दिवस था। तो भगवान् श्रीकृष्ण एक महायोगेश्वर – स्थूल शरीर के आधार वाले...।

**'गुरुं शंकररूपिणम्'**- शंकर महापुरुषों की एक स्थिति है। पूर्ण महापुरुष शिवस्वरूप हैं। **'शंका अरिः स शंकर'**– वे शंकाओं से मुक्त हैं, निर्लेप हैं इसलिए शंकर हैं।

महर्षि की स्थिति से पूर्व बाल्मीकि का मन कितना टेढ़ा था! सन्त सद्गुरु का सान्निध्य मिला तो **'उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भये ब्रह्म समाना॥'** ब्रह्म की समानान्तर स्थिति वाले हो गये। अंगुलिमाल

आरम्भिक जीवन में अत्यन्त क्रूर, दुर्दान्त दस्यु थे। एक महापुरुष का दर्शन हुआ, उनके प्रति समर्पण हुआ, जहाँ उस पथ पर दो कदम रखा, जीवन-काल में ही अरिहन्त पद को प्राप्त कर लिया। शरीर तो रहने का एक मकान मात्र है। इसमें यदि कुछ सीधापन-टेढ़ापन है, मन की वृत्तियों का है। वही मन सीधा हो जाता है जब सद्गुरु के आश्रित हो जाता है।

शंभु अर्थात् स्वयंभू = जो स्वयम् की स्थिति वाला है। शिव प्रकृति की सीमाओं से अतीत है इसीलिए उसे शिव कहते हैं–

**सुकृति संभु तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥**
**जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किएँ तिलक गुन गन बस करनी॥**

पुण्यात्मा शंकर जी के शरीर में जो निर्मल विभूति है, इन गुरु महाराज के ही चरणों की उपज है। शंकर जी में अनेकों विमल विभूतियाँ हैं, जैसे– वह आशुतोष, अवढरदानी हैं। **'कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥'**–उनके नाम के बल से शंकर जी स्वरूप से मुक्ति प्रदान कर देते हैं। वे भूतनाथ हैं – सभी जीवों के स्वामी। ये सभी विभूतियाँ गुरु महाराज के चरण रज की ही देन हैं।

शंकर तो पाप और पुण्य से परे होता है फिर पुण्यात्मा शंकर कैसा? सुकृति शंभु कैसा? वास्तव में कोई भी पुण्य और पाप से अतीत शिवतत्त्व में स्थित हुआ, किन्तु आरम्भ में तो वह साधक ही था। कोई पुण्यात्मा साधक ही गुरु महाराज के चरण रज का आश्रय लेकर, उनको हृदय में धारण कर शिवतत्त्व की स्थिति तय कर लेता है और उस निर्मल विभूति से संयुक्त हो जाता है। शिव एक स्थिति है।

**श्रीगुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती॥**
**दलन मोह तम सो सप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू॥**

श्री गुरु महाराज के चरण-नखों की ज्योति मणि और माणिक्य के तुल्य है। इसका स्मरण करने से हृदय में दिव्यदृष्टि का संचार होता है। साथ ही वे लोग बड़े भाग्यशाली हैं जिनके हृदय में गुरु महाराज के चरण आ जायँ।

मान लें, किसी ने श्रद्धापूर्वक स्मरण किया और हृदय में चरण आ ही गये तो उससे लाभ क्या? तो–

**उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।।**

हृदय के निर्मल नेत्र खुल जायेंगे और '**भव रजनी**' अर्थात् जन्म-मृत्यु के दोष और दुःख मिट जायेंगे। इस प्रकार ध्यान गुरु महाराज के चरणों का ही करना है। उससे '**सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।।**'– रामचरितमानस के प्रति सूझ पैदा हो जाती है। '**गुपुत**'- जो लिखने में नहीं आया और '**प्रगट**'- जो लिखने में आ गया; '**जो जेहि खानिक**'- जहाँ जो जिस स्थान में है अर्थात् परमात्मा के अन्तराल में जो विभूतियाँ छिपी हैं, वह सब विदित हो जायेंगी। कब? जब गुरु महाराज का चरण आपके हृदय में आ जायेगा। अर्थात् ध्यान सद्गुरु का और विदित होती हैं परमात्मा की विभूतियाँ, परमात्मा का स्वरूप; ब्रह्म की गहराइयों का हाल सूझेगा, रामचरितमानस के प्रति सूझ पैदा हो जायेगी।

वस्तुतः शास्त्र कोई विरला महापुरुष जानता है, यह उनके हृदय की वस्तु है और उनके निर्देशन में कोई विरला अधिकारी ही पढ़ता है। सब न पढ़ते हैं, न जानते हैं। शंकर महापुरुषों का सम्बोधन है इसीलिए महापुरुषों ने शंकर की बहुत महिमा का वर्णन किया है। रामचरितमानस में शिव अर्थात् सदगुरु की महिमा का वर्णन करते हुए तुलसीदास जी कहते हैं–

**जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी।।**

सत्-रज-तम – त्रिगुणमयी प्रकृति के ये तीन नगर हैं, तीन पुर हैं। इनका अन्त करने वाला त्रिपुरारि है अर्थात् त्रिगुणातीत, स्वरूपस्थ महापुरुष! यदि वह कृपा न करें तो मेरी भक्ति कोई नहीं पा सकता।

**सिव सेवा कर फल सुत सोई। अबिरल भगति राम पद होई।।**

सेवा शिव की करें, भक्ति राम की मिलेगी। और भी है–

**बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू।।**

बिना छल, मन-वचन और कर्म से निश्छल होकर '**बिस्वनाथ**'- विश्व के जो नाथ हैं (स्वामी हैं, गुलाम नहीं) उनके चरण-कमलों में प्रीति– '**राम भगत कर लच्छन एहू**'–यह रामभक्त के लक्षण हैं। ध्यान धरा हमने शिव के चरणों का, और भक्ति पूरी हो गयी राम जी की, कितना विचित्र है! भोजन आप करें और पेट हमारा भर जाय! किन्तु अध्यात्म में ठीक ऐसा ही है–

**संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥**

शंकाओं से जो मुक्त हैं, शिवतत्त्व में स्थित सद्गुरु महापुरुष से विमुख होकर मेरी भक्ति चाहता है वह मूढ़ है, नरकगामी है। उसकी बुद्धि अत्यन्त अल्प है।

परमात्मा राम ने एक बार सभा बुलाई। उस विशाल जनसभा में भगवान ने कहा कि आप सबसे एक अत्यन्त गोपनीय रहस्य का उद्घाटन करने जा रहा हूँ, हाथ जोड़कर कह रहा हूँ! परम ब्रह्म परमात्मा को हाथ जोड़ने की क्या आवश्यकता थी? अनुरोध इसलिए कि जीवमात्र के लिए उनकी करुणा है। जो बात वह कहने जा रहे हैं, गले के नीचे उतरने वाली नहीं है।

गुरु को जब हम-आप देखते हैं तो उनका शरीर ही तो दृष्टिगोचर होता है। 'वे शिवस्वरूप में स्थित महापुरुष हैं'–यह हठात् समझ में नहीं आता जब तक प्रभु करुणा कर समझा न दें। भले तत्काल समझ में न आये, देर से समझ में आये किन्तु सत्य यही है इसलिए विनय के साथ कह रहे हैं कि–

**औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।**
**संकर भजन बिना नर, भगति न पावइ मोरि॥**

शिवस्वरूप महापुरुष के बिना कोई मेरी भक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। यदि परमात्मा को प्राप्त करना है तो ध्यान सद्गुरु के चरणों का ही करना होगा।

बहुत से लोग केवल गुरु-गुरु जपते हैं कि जब सब गुरु ही हैं तो भगवान की क्या आवश्यकता? हो गया भजन! कुछ लोग गुरु के चरणों का ध्यान नहीं धरते, कहते हैं– हमारे गुरु तो सीधे भगवान ही हैं। किन्तु इन

दोनों मान्यताओं का खण्डन करते हुए परमात्मा श्री राम कहते हैं–

**संकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास।**
**ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महुँ बास॥**

भगवान शंकर का तो प्यारा है, सद्गुरु के ऊपर निर्भर है लेकिन '**मम द्रोही**'- परमात्मा को नहीं चाहता, उनका सुमिरन नहीं करता; अथवा परमात्मा का प्रेमी हो गया और शिव का द्रोही है कि परमात्मा ही गुरु हैं, हमें गुरु की क्या आवश्यकता? '**ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महुँ बास।**'- ऐसे लोग एक कल्प अर्थात् एक जन्म तक घोर नरक में वास करेंगे। इसके पश्चात् वह रास्ते पर ही आयेंगे क्योंकि ईश्वर-पथ में कभी बीज का नाश नहीं होता। यदि एक बार क्रिया जाग्रत हो गयी, इस पथ को समझकर आपने दस कदम रख दिया, अगले जन्म में वहीं से साधन आरम्भ करेंगे जहाँ से साधन छूटा था। माया में ऐसा कोई यन्त्र नहीं है जो इस सत्य को मिटा दे। माया केवल विलम्ब कर सकती है इसलिए वह एक कल्प अवश्य भोगेगा! इसलिए ध्यान सद्गुरु के चरणों का और उसके द्वारा परमात्मा की प्राप्ति का विधान है। सतत् सुमिरन बना रहना चाहिए, प्रभु से प्रार्थना बनी रहे।

पंचवटी में लक्ष्मण ने परमात्मा राम से पूछा कि प्रभो! माया क्या है? ब्रह्म क्या है? ज्ञान-वैराग्य क्या है और सुख का मूल क्या है? भगवान राम ने कहा–

**भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो सन्त होइँ अनुकूला॥**

लक्ष्मण! अनुपम सुख की मूल तो भक्ति है। लक्ष्मण ने कहा– तो प्रभो प्रदान करें! राम ने कहा– नहीं लक्ष्मण! इसे सीधे तो मैं भी नहीं दे सकता। '**मिलइ जो सन्त होइँ अनुकूला।**'– वह भक्ति तभी मिलेगी जब कोई सन्त अनुकूल हो। उधर शंकर बिना कोई भक्ति नहीं पा सकता और यहाँ कहते हैं– सन्त बिना कोई पा नहीं सकता, स्वयं मैं भी नहीं दे सकता। अतः ईश्वर-पथ में ध्यान सद्गुरु के स्वरूप का ही करना चाहिए।

सन्त भक्तों में मीराबाई के पश्चात् सहजो बाई एक प्रख्यात संत हुई हैं, उनका भजन है–

**हरि ने जनम दियो जग माहीं, गुरु ने आवागमन छुटाहीं।**
**हरि ने करम भरम में गेरी, गुरु ने काटी ममता बेरी।**
**हरि ने पाँच चोर दियो साथा, गुरु ने लइ छुड़ाइ अनाथा।**
**हरि ने मो सो आप छिपायो, गुरु दीपक दै ताहि दिखायो।**
**राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ, गुरु के सम हरि को न निहारूँ।**

**हरि की कृपा होय तो नहीं होय तो होय।**
**सहजो गुरु की कृपा बिना भव पार न पावे कोय॥**

उन्होंने कहा- हरि की कृपा होय तो उचित, न होये तो कोई विशेष नुकसान नहीं किन्तु **'सदगुरु की कृपा बिना भव पार न पावे कोय।'।**

हरि ने जन्म दिया है जग में, कृपा करके दुर्लभ तन दिया लेकिन आवागमन बना रहा, गुरु ने आवागमन छुड़ाया।

हरि ने जन्म तो दिया, लेकिन पीछे लगा दिया पाँच चोर - रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द – पंच विकार। गुरु ने इसको संयमित करके इससे मुक्ति दिला दी।

हरि ने जन्म तो दिया लेकिन करम और भरम में गिरा दिया। जिधर देखो उधर भ्रम ही भ्रम है। और है ही क्या दुनिया में। और **'गुरु ने काटी ममता बेड़ी'**- भ्रम तब तक है जब तक हमारी ममता है।

भगवान् ने जन्म तो दिया, अपने आपको छिपा लिया। तो **'हरि ने मो सो आप छिपायो, गुरु दीपक दै ताहि दिखायो।'** देख ले, यह रहे भगवान्। इसलिये,

**हरि की कृपा होय तो नहीं होय तो होय।**
**सहजो गुरु की कृपा बिना भव पार न पावे कोय॥**

गुरु की कृपा बिना कोई भव पार नहीं पाता।

## * अनुसुइया आश्रम में प्रथम गुरुपूर्णिमा-

गुरु महाराज की शरण में हम चित्रकूट आये। चित्रकूट एक वैष्णव बाहुल्य तीर्थ है, रामजानकी के हजारों मंदिर हैं। सबके यहाँ अन्नकूट मनाया जाता था। रामनवमी, रासलीला, जन्माष्टमी सारे त्यौहार मनाये जाते थे लेकिन गुरुपूर्णिमा कहीं नहीं मनाई जाती थी। एक दिन एक पंडित आये, जो आश्रम के भक्त थे। वे चित्रकूट क्षेत्र में ग्रामीण अंचल के जाने-माने पंडित थे। उन्होंने आते ही महाराज को प्रणाम किया और कहा- महाराज! परसों गुरुपूर्णिमा है। महाराज ने सुना तो कहा– पंडित, कैसी गुरुपूर्णिमा? पंडित बोला– महाराज! यह व्यास पूर्णिमा है। वेदव्यास ने श्रुतज्ञान की परम्परा को लेखन से जोड़ते हुए लौकिक, पारलौकिक सारे ज्ञान को लिपिबद्ध किया। लेखन की पूर्णता पर शिष्यों ने गुरुदेव की पूजा की थी, तभी से गुरुपूर्णिमा, व्यास पूर्णिमा मनाई जाती है।

पंडित तो इतिहास बता कर चले गये। तीसरे दिन जो शिष्य थे चार-छः वहाँ पर, उन्होंने परामर्श किया। जंगल से जंगली फूल ले लाये... छोटे-छोटे फूल... तो माला बना ली, बेल-पत्र पर ॐ-ॐ लिख दिया। चन्दन का टुकड़ा तो महात्माओं के यहाँ होता ही है तो चन्दन घिसा और विधिवत कटोरी में लिया। फूल और माला थाली में रखकर चले आये। गुरु महाराज ने पूछा– का है रे आज? कैसे सनक गये हो? तो वे बोले– गुरु महाराज! आज गुरुपूर्णिमा है, हम भी अपने गुरु महाराज की पूजा करेंगे, चरण धोयेंगे।

गुरु महाराज बोले– मैं गोड़ न धोवइहों।.... अच्छा तो एक नाखून धो लो। दाहिने पैर का अंगूठा धोया और लोगों ने चरणामृत लिया। फूल सिर पर रख दिया, चन्दन लगा दिया विधिवत् और,

**'कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।**
**सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानी सहितं नमामि॥',**

**'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।**
**गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥'**

पढ़कर शिष्यों ने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर लिया, धूनी से विभूति खा लिया, लगा लिया। हो गयी गुरुपूर्णिमा।

कुछ देर बाद महाराज बोले– क्यों रे, जब गुरु पूर्णिमा मना ही लिया तो हलुवा बनना चाहिए। तो एक किलो गाय का घी (डालडा का आविष्कार तब नहीं हुआ था, तब की बात है।), एक किलो गेहूँ का आटा, एक किलो चीनी – यही वहाँ हलवा बनाने का माप है। विधिवत् हलवा बना। तीन आदमी और पहुँच गये थे। छः पहले से थे, हो गये नौ। नौ आदमियों ने वह हलवा प्रसाद लिया और भण्डारा हो गया।

दूसरा साल आया तो पन्द्रह दिन पहले से ही कोई-कोई शिष्य रटने लगे– अब इतने दिन बाकी हैं, अब इतने दिन बाकी हैं। गुरु महाराज तो भूल ही गये थे। महाराज ने कहा– क्यों रे, क्या रोज-रोज फुसर-फुसर करते हो। वे बोले– महाराज, अब इतना दिन बचा है गुरुपूर्णिमा में। गुरु महाराज जी बोले– हाँ तोरे हरामी की, हलवा मुँहे लग गया है।

हलवा माने दुर्लभ वस्तु। उन दिनों कोई मिठाई नहीं थी गुड़ छोड़कर। गुड़ भी कभी कभार, पन्द्रह दिन में एक-दो बार। तो गुरु महाराज बोले– हलवा मुँहे लग गया, इसके मारे रटत हो। गुरुपूजा नहीं पेट-पूजा के लिये याद किये हो। उस बार पन्द्रह आदमी हो गये। थोड़ा प्रचार हो गया था न, इसलिए। तीसरे साल फिर हुए साठ लोग। क्रमशः दो-तीन सौ हो गये। अन्तिम गुरु पूर्णिमा में छः कुन्तल आटे की पूड़ी बनी। जंगल में उन दिनों इतना भी बहुत था। उसी के अनुपात से कोहड़े का साग और सब कुछ।

गुरु महाराज के शरीर काल में गुरुपूर्णिमा छः कुन्तल तक पहुँच गई। महाराज कहें– हो, बहुत भीड़ हो गयी थी। पत्ते-पत्ते पर आदमी रहा है। सब खूब खाये। यहाँ से वहाँ तक पंगत बैठी। और उसमें कत्थक लोग, गानेवाले-नाचनेवाले भी आ गये। कर्बी शहर है, चित्रकूट तीर्थ है तो जहाँ-तहाँ वैष्णव संतों के यहाँ रामलीला, रासलीला हुआ ही करती है। तो नचनिया-गवैया रहते ही हैं तीर्थों में, वे भी पहुँच गये। उन्होंने विधिवत् भजन सुनाया।

मई सन् उनहत्तर में गुरु महाराज का शरीर छूट गया, हम लोगों पर तो वज्रापात पड़ गया। फिर उनका भण्डारा किया, वार्षिक भण्डारा भी किया। गुरुमहाराज की पुण्यतिथि जगतानन्द (बरैनी-मीरजापुर) में मनाई जाने लगी, क्योंकि यहाँ गुरु महाराज के दो-चार पुराने भक्त थे–एक डॉक्टर साहब थे, एक चन्दन गुरु, और भी कई...। सृष्टि एक तरफ से कल्ला फेंकती है, थोड़ा बढ़ता है, दूसरी तरफ से पौधा फिर सूखने लगता है, मुरझाने लगता है। बाल पकता है, स्वास ठण्डी हो गयी कि गया। ये क्रम चलता ही रहता है। जो-जो दिग्गज हमें दिखाई पड़े, सब चले गये।

हमें भण्डारे की व्यवस्था का अनुभव नहीं था। जगतानन्द में अनुसुइया महाराज भण्डारे की व्यवस्था देखते थे किन्तु वे मनमौजी थे। जब मौज आवे, उठकर चल दें। एक बार दशहरे पर गुरुमहाराज का वार्षिक भण्डारे के अवसर पर वे वहाँ से चले गये तो हमने डाक्टर साहब से कहा- देखो, हमने तो कभी भण्डारा किया नहीं, हम जानते नहीं क्या होता है। हम भण्डारे पर कभी ध्यान ही न दें। लोग आते हैं, खाते हैं, जाते हैं... बस... कोई मतलब नहीं। जैसे बनता हो, बनाओ अपने ढंग से। हमको इसका कोई तजुर्बा नहीं है।

वह भण्डारा हमारे सिर पर पड़ गया था। हमारा विचार था, हम कभी भण्डारा नहीं करेंगे। क्यों करें? गुरु महाराज थे तो हम गुरुपूजा करते थे। अब हम भण्डारा नहीं करेंगे। किन्तु वहाँ के भक्तों ने हमको ही गुरु बनाकर बैठा दिया.... जबरदस्ती.... हम हुए नहीं, अब भी नहीं हैं। जब कोई पूजा करता है तो हम गुरु महाराज को सौंप देते हैं कि आपन सम्भालो।

गुरु महाराज ने कहा था– मैं मरिहौं न। मैं कभी नहीं मरूँगा। कोई गोली मार देई तो शरीर छूट जाई। तो हमने पूछा– महाराज! गोली से शरीर छूटने में और खटिया में बुखार से मरने में फर्क क्या है? शरीर छूटना था सो तो छूट गया। तब गुरु महाराज बोले– हो, बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि हुए, किसी का तो शरीर नहीं दिखाई देता। राम हुए, कृष्ण हुए, बुद्ध हुए.... कोई यहाँ जीवित नहीं दिखाई पड़ता। शरीर तो किसी न किसी बहाने से छोड़ना ही पड़ेगा तो हमने यही बहाना सोचा है।

एक दिन कोई बात हो गई, मेरा लड़कपन था, पता नहीं हमारे मुँह से क्या निकल गया, गुरु महाराज बोले– तू बात का कहत है, मोके गोली मारत है। मैं कैसे बताऊँ, छेदत चली जात है। हम बोले- अरे, हम ही गोली मार दिये। और गुरु महाराज ने शरीर त्याग दिया, दूसरे-तीसरे दिन। तो हम बोले– कहत रहे गोली से मरिहौं, यही गोली रही। तू बात का कहत है, मोके गोली मारत है। मैं कैसे बताऊँ, छेदत चली जात है।

शरीर तो चला जायेगा, लेकिन सहज-स्वरूप से, आत्मस्वरूप से, सूक्ष्म-स्वरूप से मैं सदा विद्यमान रहूँगा। कोई जहाँ से भी प्रणाम करेगा, मैं उसको देखूँगा, उसका कल्याण करूँगा। मैं कभी नहीं मरूँगा। अत्रि महाराज आज भी विद्यमान हैं, वैसे ही मैं भी रहूँगा।

अनुसुइया निवास के क्रम में एक बार महाराज को बुखार आने लगा। गुरु महाराज ने सोचा– आगरा चलें, वहाँ भगत हैं। थोड़ा बुखार आ रहा है। चार दिन दवाई कर, सबको देख-सुनकर चला आऊँगा। जब पहुँच गये बहुत खुश हुए आगरा वाले, बोले– महाराज जी आ गये, संतजी आ गये। शाम को सभी दर्शन करने पहुँचे।

रात के लगभग दो बजे अनुभव में अत्रि महाराज पहुँचे, बोले– जब शरीर की इतनी चिन्ता करोगे तब भजन कैसे होगा? चलो, आश्रम चलो। तो महाराज ने कहा– भगवन्! आपने क्यों कष्ट किया, वहीं से संकेत कर देना चाहिए था, मैं चला आता। अत्रि महाराज बोले– यदि हम न आते तो आता कौन। वहाँ है कौन? या तो मैं हूँ, या तुम हो। और वहाँ कोई नहीं है।

गुरु महाराज कहें– हो, सतयुग से लेकर दूसरा कोई पूर्णत्व प्राप्त महापुरुष वहाँ हुआ ही नहीं। कई युगों के बाद अत्रि महाराज ने हमारा नाम बताया। आगे गुरु महाराज ने कहा– अत्रि महाराज आज भी अपनी जगह में विद्यमान हैं, हमको दर्शन दिया है। अनुसुइया माई भी विद्यमान हैं। मैंहूँ मरिहौं नहीं, यहीं रहिहौं। तो हम बोले– जब आप यहाँ हैं ही तो हम क्यों अपने ऊपर जिम्मेदारी लें। हमसे कोई आशीर्वाद माँगता है, तो हम कह देते हैं– जाओ गुरु महाराज से ले लो। आपकी श्रद्धा ही कृपा बनकर लौटेगी, और

आपको मिल जायेगी। और गुरु महाराज के प्रति जो श्रद्धा थी, अदब था, उठना-बैठना-चलना, सामने से गुजरना, आज भी वही बना हुआ है। और एक सींक बराबर गलत कदम रख दिया तो जैसी डाँट उन दिनों पड़ती थी, वैसी डाँट आज भी विद्यमान है।

गुरु पूर्णिमा के पावन पर्व पर दसियों हजार की भीड़ अनुसुइया आश्रम में हो जाया करती थी। सैकड़ों माताएँ भी सपरिवार महाराजजी के दर्शनार्थ एकत्र हो जाती थीं। जब घर जाने की अनुमति हो, तो दो-एक महिलायें निवेदन करती थीं कि महाराजजी! अब मैं यहीं रहकर आपके सान्निध्य में भजन करूँगी। संसार में मेरा कोई नहीं रह गया है।

महाराजजी कहते– देखो हो! का कहत है? वैराग सवार है। घर में रहिहैं तो मारे गृहस्थी के साल भर फुरसत न मिली और इहाँ वैराग चढ़ा है, मरकट वैराग! अरे हम इहाँ अपने बहिन को रहने की अनुमति दें, माई को रखें अथवा बिटिया को रहने दें तो लोग का जनिहैं कि माई-बहिन हैं। लोग तो इहै कहिहैं कि बाबा मेहरिया रखे हैं। **यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धम् न करणीयम्।** हालाँकि मन-क्रम-वचन से तनिको दोष नहीं है फिर भी जो लोकदृष्टि के विरुद्ध है वह नहीं करना चाहिए। उससे समाज में गलत संस्कार पड़ते हैं।

''नहीं! महाराजजी! आप महापुरुष हैं। आपको कोई कुछ नहीं कहेगा। यहाँ पर हमारा मन बहुत लगता है। यहीं भजन करने की आज्ञा दीजिए।''– महिलाओं के ऐसा कहने पर महाराजजी कहते–

''हूँ! चामे की धोकरी कुत्ता रखवार। ताजा उतारा चमड़ा है, कितना ही वफादार कुत्ता है, ऊ जरूर छुई। जबै मौका पाई, दाँत जरूर लगाई। स्वभाव है न। अरे! मैं साधू हूँ, मोके कउनो फरक नाहीं। दो-चार औरउ ऐसन हैं जिनके ऊपर संगदोष का प्रभाव नहीं है, मोरे स्वरूप हैं; लेकिन जो नये साधक हैं उनके तो गुण-स्वभाव पुराने हैं। **'गुन सुभाव त्यागे बिनु दुरलभ परमानन्द।'** दस-बारह साल में तो साधक लाइन पकड़ता है, तब कहीं खतरा

टलता है। अबै तो ई सब कुम्हड़ बतिया हैं। संग से जती नष्ट होई जात है। जो भाग! घर ही से भजन कर। मनै से आवा-जावा कर। कल्यान मैं करिहौं। साँझ-सबेरे मोर रूपवा देखा कर। कउनो एक नाम जपा कर। राम-राम जप। जो और पति की सेवा कर। जवन तैं इहाँ पइहै वह मैं वहीं दे देइहौं।'' इस प्रकार सान्त्वना देकर उन्हें घर भेज देते थे।

महाराजजी प्रायः भाविकों से कहते थे कि 'ओम्', 'राम', 'शिव'–किसी भी दो-ढाई अक्षर के नाम को चुन लो। सबका आशय एक है। 'ओम्' पर अधिक बल देते थे, कहते थे, ''मोरे रूपवा देखा कर। शरीरिया से कहूँ रहो, मनवा से आवा-जावा करो। सुबह-शाम, साँझ-बिहान जब याद आवै तब-तब मन से पहुँच जाया करो। जब भी मोरे रूप को एक भी मिनट हृदय में रोक लोगे तो जिसका नाम साधना है, वह भजन मैं तुम्हें प्रदान कर दूँगा। तुम्हारे हृदय से ही प्रेरणा करके भजन की प्रशस्त पटरी पर मैं खड़ा कर दूँगा; भगवान खड़ा करते हैं। **'तुलसिदास ( मन ) बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै।'** तुम एक मिनट ध्यान तो धरो। 'ओम्' जपो तो।''

तो यह गुरुपूर्णिमा है। जब हमारी कोई पूजा करता है तो हम सीधे गुरु महाराज की ओर ही बढ़ा देते हैं कि आप अपना आशीर्वाद दिया करो, गुरुपूर्णिमा सम्पन्न कराया करो।

**॥ बोलिये गुरुदेव भगवान की जय॥**

# आरती का अर्थ

## अनन्तश्री विभूषित, योगिराज, युगपितामह परमपूज्य श्री स्वामी परमानन्दजी महाराज ( परमहंस जी ) की आरती का अर्थ

यह सद्गुरुदेव की आरती है। भगवान की आरती तो सबने सुनाई है लेकिन यह सद्गुरुदेव की आरती क्या? कारण कि परमात्मा यदि परम धाम है तो सद्गुरु ही उस परमात्मा की जागृति, पूर्तिपर्यंत साधन और प्रवेश द्वार है। गुरु परमात्मा का ही प्रतिबिम्ब होता है।

**ब्रह्मवेत्ता वक्ता सुरति, गुरु के लक्षण जान।**
**इच्छा राखे मोक्ष की, ताहि शिष्य पहिचान॥**

ब्रह्मवित हों, संयुक्त हों, ब्रह्म के विषय में व्यक्त कर सकते हों, सुरत मन की दृष्टि का नाम है, इस सुरत को पकड़कर ईश्वर-पथ पर सँभालते हों, चलाते हों – ये गुरु के लक्षण हैं। केवल मोक्ष की इच्छा रखे, यह शिष्य के लक्षण हैं। और सब कामनायें रास्ते में, अपने आप स्वतः पूरी होने लगती हैं। **'मौनं कृपालुम्'**– जिसकी इंद्रियां मौन हैं, जो कृपालु है, सद्गुरु के यही लक्षण हैं।

वास्तव में अविनाशी तत्व है परमात्मा। जो उस तत्व से संयुक्त है, वह हैं सद्गुरु। 'गु' और 'रु' दो अक्षर हैं – एक इंद्रियों का संबोधन है, एक सहज प्रकाश-स्वरूप परमात्मा का। मनसहित इंद्रियों में जो अंधकार है, इसको मिटाकर ईश्वरीय जो सहज प्रकाश का अभ्युदय होना है और उसकी स्थिति वाले हैं, वे सद्गुरु हैं।

सारा ईश्वर-पथ, अध्यात्म-पथ, संत-मत सद्गुरु पर ही आधारित है। भगवान कृष्णोक्त गीता योगदर्शन है। लेकिन यह पूरी की पूरी गीता योगशास्त्र है, गुरु-शिष्य संवाद है। अर्जुन एक शिष्य, और सद्गुरु हैं कृष्ण। पहले

अर्जुन भ्रम में था। धरम के नाम पर कुछ उसने याद कर रखा था और प्रश्न रखा– गोविन्द! कुलधर्म सनातन है, जाति-धर्म शाश्वत है, मैं युद्ध नहीं करूँगा। तो भगवान कृष्ण ने कहा– अर्जुन! यह अज्ञान है। तुमने कहाँ से याद कर लिया? इसमें कदापि कल्याण नहीं है, न ही पूर्व श्रेष्ठ पुरुषों ने कभी आचरण किया है। तब अर्जुन ने समर्पण करते हुए कहा कि-

**कार्पण्यदोषोऽपहतस्वभावः**
**पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।**
**यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे**
**शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥** (गीता, 2/7)

भगवन्! यह सब अज्ञान है तो सिद्ध है कि कायरतारूपी दोष ने मेरे स्वभाव को नष्ट कर दिया है। मैं धर्म के रास्ते में विशेष रुप से मूढ़ चित्त हूँ, आपकी शरण हूँ। मुझे वह उपदेश कीजिए जिससे मैं परम श्रेय को प्राप्त हो जाऊँ। फिर उपदेश करके छोड़ मत दीजिए, मैं कदाचित् लड़खड़ाऊँ तो वहाँ मुझे सहारा दीजिए क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ। अर्थात् योगेश्वर कृष्ण एक सद्गुरु हैं और अनुरागी ही अर्जुन है।

अनुरागी ही शिष्य हुआ करता है। प्राप्ति हमें करनी है भगवान की लेकिन ध्यान धरना है, समर्पण करना है सद्गुरु के प्रति। यह कुछ अटपटी बात है, सहसा समझ में नहीं आती लेकिन योगदर्शन का सिद्धांत ही इसी पर टिका हुआ है जैसा कि गीता में है कि ईश्वर कहाँ रहता है? तो–

**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।**
**भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥** (गीता, 18/61)

अर्जुन! वह परमात्मा सम्पूर्ण भूत प्राणियों के हृदय-देश में वास करता है। इतना समीप, हृदय के अंदर, तब लोग देखते क्यों नहीं? तो कहते हैं– मायारूपी यंत्र में आरूढ़ होकर भ्रमवश भटकते ही रहते हैं, इसलिए नहीं देखते। माया पर आरूढ़ हम हुए, **'अपने हाथों बर के रसरिया, अपनी गटइया के फांसा। धोबिया जल बिच मरत पियासा॥'**

जब ईश्वर हृदय में है तो शरण किसकी जायं?

**तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।**
**तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥** (गीता,18/62)

अर्जुन! उस हृदयस्थित ईश्वर की शरण जाओ। **'सर्वभावेन'**– सम्पूर्ण भाव से जाओ; यह नहीं कि थोड़ा-सा भाव संकटमोचन, थोड़ा-सा पशुपतिनाथ, थोड़ा-सा कामाख्या देवी, थोड़ा वैष्णव देवी... आप तो बारह आने लीक हो गए। हृदयस्थित ईश्वर के हिस्से में तो आपका भाव, आपकी श्रद्धा चार ही आने पड़ी। कल्याण नहीं होगा।

भगवान कहते हैं– **'सर्वभावेन भारत'**– सम्पूर्ण भावों से, पूर्ण मन से, समर्पित होकर शरण जाओ। मान लो हमने सारी मान्यतायें तोड़ी, और शरण चले ही गए तो उससे लाभ क्या? तो कहते हैं– **'तत्प्रसादातपराम् शांतिम्'**–उसके कृपा-प्रसाद से अर्जुन! तुम परम शान्ति को प्राप्त कर लोगे। **'स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्'**–उस स्थान को, उस घर को पा जाओगे जो शाश्वत है। तुम्हारा निवास रहेगा और तुम्हारा जीवन रहेगा। इसी का नाम मोक्ष है।

कल्याण एक परमात्मा की शरण में, लेकिन परमात्मा को हमने देखा ही नहीं, शरण जायें तो कैसे जायें? यदि हम विचार करते हैं, हृदय में ईश्वर को टटोलते भी हैं, तो राग-द्वेष दिखाई पड़ता है, काम-क्रोध-मोह-लोभ दिखाई पड़ता है। कहीं-कहीं श्रद्धा और भाव भी दिखाई पड़ता है। ईश्वर तो नहीं दिखाई देता, उसकी शरण में कैसे जायँ? तब कहते हैं– अर्जुन! इससे भी अत्यन्त गोपनीय बात मुझसे सुन कि–

**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।** (गीता, 18/65)

**सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**
**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥** (गीता, 18/66)

अर्जुन! **'मन्मना भव'–** मुझमें मनवाला हो, मेरे परायण हो, मेरा अनन्य भक्त हो। मुझे नमस्कार कर और सम्पूर्ण धर्मों की चिन्ता छोड़ कि मैं

किस श्रेणी का कर्ता हूँ (शूद्र हूँ, वैश्य हूँ, क्षत्रिय श्रेणी पर हूँ कि ब्राह्मण श्रेणी का कर्ता हूँ) सारी चिन्ता छोड़ मात्र मेरी शरण हो जा, तू सम्पूर्ण पापों से भली प्रकार मुक्त हो जाएगा।

पहले कहते हैं– सम्पूर्ण भावों से हृदयस्थित ईश्वर की शरण जाओ। अगले ही श्लोक में कहते हैं कि उससे भी अति गोपनीय वचन को सुन कि संपूर्ण भावों से मेरी शरण आओ। वास्तव में कृष्ण एक सद्गुरु थे। यदि परमात्मा की जरूरत है, सम्पूर्ण हृदय से परमात्मा की शरण जाने का यदि सृष्टि में कोई तरीका है तो मन-क्रम-वचन से सद्गुरु की शरण जाओ।

**गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई॥**

हाँ, यह प्रश्न अलग है, वह गुरु मिले कैसे? ढूँढो, पा जाओगे। भगवान कृष्ण एक योगेश्वर थे। भाववश उन्हें भगवान, परब्रह्म, परमात्मा... सारी उपाधियाँ उनके साथ जुड़ी हुई हैं। हम कहते भी हैं लेकिन प्रत्यक्षदर्शी था संजय। जो कुछ अर्जुन ने देखा, सब कुछ संजय ने देखा और उसके प्रभाव से अपने आपको परम धाम का निवासी भी बनाया उस प्रत्यक्षदर्शी संजय ने। अन्त में संजय ने निर्णय दिया कि कृष्ण कौन हैं?

**यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।**
**तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम्॥** (गीता, 18/78)

जहाँ योगेश्वर कृष्ण हैं, जहाँ महात्मा अर्जुन हैं, वहीं श्री है, विजय है, विभूति है, अचल नीति है। राजन्! विजय वहीं है जहाँ कृष्ण हैं।

योगेश्वर कृष्ण अर्थात् कृष्ण एक योगेश्वर हैं। अर्जुन एक शिष्य है तो– **'राखइ गुर जौं कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता॥'**– यदि तकदीर के लेख रूठ गए, तकदीर में घोर नर्क और यातनायें लिख गयीं तो गुरु रख लेंगे। कारण कि जैसे-जैसे उस कर्म का, शुभ कर्मों का निर्माण होता है, उस विधि पर चला देंगे; और यदि सद्गुरु उपलब्ध नहीं हैं तो भगवान नाम की कोई वस्तु नहीं है। जबकि भगवान ही तो एक ऐसी सत्ता है जो शाश्वत है, सर्वत्र है, व्याप्त है, सदा है, अपरिवर्तनशील है, उन्हें घटना-बढ़ना

भी नहीं है, हटाना भी नही है। हैं.... होंगे! लेकिन हमारे दर्शन, हमारे स्पर्श और प्रवेश के लिए तो नहीं हैं। उसकी कुंजी सद्गुरु हैं। जो उस भगवत्ता से संयुक्त हैं, उससे गुजरे हुए हैं, चले हुए हैं, वे साधक को पकड़कर उस रास्ते को, क्रिया को जगा देंगे, उस पर चलने की विधि बता देंगे और जैसे-जैसे तुम पुकारोगे, वैसे साथ भी रहेंगे। तो जो कुछ महिमा है, गुरु की है।

इसी पर आश्रम में एक आरती गाई जाती है। पहले तो अनुसूइया आश्रम में कोई आरती नहीं थी। काफी वर्ष तक हमारे सामने कोई आरती नहीं गायी गयी। बड़े सुबह महाराज जी उठ जाए, दो बजे खाँसने लगें, फिर भी कोई-कोई साधक न उठें, न सकपकायें तो गुरु महाराज बोलें– ''उठो हो माटी के धोंधों! अरे, महतारी का गरभ छुड़ाने आए हो रे, उठो भजन करो। साधु को ब्रह्मबेला में, चौथे प्रहर में जग जाना चाहिए। साधु को चार घंटे सोना चाहिए। अधिक सोनेवाला अलहदी होता है।''

पहले डमरू भी नहीं बजता था। कोई डमरू ले आया तो धूनी पर लगा। थोड़ा-सा कुर्र दे बज जाए तो हमने पूछा– ''भगवन्! यह डमरू बजने का अर्थ क्या है? यह कौन-सी पूजा है?'' तो बोले– ''ये है एलारम। अलारम है। अलहदी हैं, उनको जगाने के लिए। और कुच्छो नहीं।'' तो महापुरुषों ने जो कुछ नियम बना रखा है, साधकों को कर्म-पथ पर चलाने के लिए।

कुछ दिनों बाद हमारे आश्रम से एक महात्मा पास आउट होकर, पूर्णत्व की अवस्था के करीब झूलते हुए, झूमते हुए पहुँच गए धारकुंडी आश्रम। वहाँ उन्हें गुरु महाराज का गुरुत्व व विभूति मिली। उन्होंने प्रसन्न होकर उद्गार में एक स्तुति लिखकर भेजा। वही है यह स्तुति... आरती।

धारकुण्डी महाराज जी द्वारा भेजी गयी आरती उसी दिन से गायी जाने लगी। इस स्तुति में गुरु का स्वरूप क्या होता है?, गुरु का कार्य क्या होता है?, शिष्य क्यों शरण में जाता है?, शिष्य क्या माँग ले कि उसका काम चल जाय? छुटपुट वस्तुएँ मत माँगो, जरा-सी एक बात मांग लो कि **'मोपर हेरो'**– भगवन्! मुझ पर दृष्टि बनाए रखें। इसमें सब कुछ आ जाता है। फिर

जब दृष्टि ही है मालिक की तो वही होगा जिसमें आपका हित होना है। अनिष्ट हो ही नहीं सकता। इसी आशय की यह आरती इस प्रकार है-

**ॐ जय सद्गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।**
**निर्गुण निर्मूलं धरि स्थूलं काटन शूलं भवभारी।।**

**सूरत निज सोहं, कलि मल खोहं, जन मन मोहन छवि भारी।**
**अमरापुर वासी सब सुख रासी, सदा एकरस निर्विकारी।।**

**अनुभव गंभीरा, मति के धीरा, अलख फकीरा अवतारी।**
**योगी अद्वेष्टा, त्रिकाल द्रष्टा, केवल पद आनन्दकारी।।**

**चित्रकूटहिं आयो, अद्वैत लखायो, अनुसुइया आसन मारी।**
**श्री परमहंस स्वामी, अंतर्यामी, हैं बड़नामी संसारी।।**

**हंसन हितकारी, जग पगु धारी, गर्व प्रहारी उपकारी।**
**सतपंथ चलायो, भरम मिटायो, रूप लखायो करतारी।।**

**यह शिष्य है तेरो, करत निहोरो, मोपर हेरो प्रणधारी।**
**जय सदगुरुदेवम्...**

कभी-कभी आश्रम में जब मेला पहुँचे तो मेले में आने वाले लोग देवताओं की जय बोलना शुरू करें... बोल हनुमान जी की जय..., अनुसुइया की जय..., अत्रि महाराज की जय..., राम जी की जय... तो महाराज बहुत बिगड़ें। वह बोलें– ''अरे, उनकी तो जय है ही। वे विजय पा चुके प्रकृति पर। वे तो विजेता हैं। आपन जय मनाओ, अपनी जय के लिए सोचो, उपाय करो'' तो **'जय सद्गुरुदेवं'**- जो जय कर चुके हैं, जो इस त्रिगुणमयी प्रकृति के विजेता हैं, ऐसे हैं सद्गुरु। वे **'देव'** हैं, **'परमानन्द'**स्वरूप हैं, **'अमर शरीरं अविकारी'**–वे जन्म-मृत्यु के बंधन से परे हैं, और शरीरों के विकार से मुक्त हैं।

**'अमर'**... पूरा संसार मरणधर्मा है। **'चलं लक्ष्मी चलं आयु चलं यौवन सर्वशः।'** इतना ही नहीं,

**आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मायामयं जगत्।**
**सत्यं सत्यं पुनः सत्यं हरेर्नामैव केवलम्॥** (कैवल्याष्टकम्)

सृष्टि निर्माता विधाता और उससे उत्पन्न चौदहों भुवन, चराचर जगत पुनरावर्ती स्वभाव वाले हैं, माया में हैं। धोखे की टटिया है, स्वप्नवत् है, नश्वर है; जिनका कोई अस्तित्व नहीं। आत्मा ही सत्य है, सनातन है, अमृत-स्वरूप है, जहाँ मृत्यु का समावेश नहीं है, अपरिवर्तनशील है, काल से अत्यंत परे है, अविनाशी है, वही सनातन सत्य है।

अमर अर्थात् आत्मतत्त्व में स्थित और शरीर-सम्बन्धी विकारों से मुक्त हैं। अब उन्हें शरीर नहीं धारण करना पड़ेगा। उससे निवृत्ति हो गयी।

**निर्गुण निर्मूलम् धरि स्थूलं काटन शूलं भव भारी।**

वे गुणातीत हैं। सत्-रज-तम त्रिगुणमयी प्रकृति है, वे प्रकृति के तीनों गुणों से अतीत हैं। और '**निर्मूलम्**'–वह प्रकृति का मूल कारण सहित उससे अतीत हैं। वह निवृत्ति प्राप्त हैं।

'**धरि स्थूलम्**'–ऐसी निवृत्ति के पश्चात् भी वे स्थूल शरीर के आधारवाले हैं। महात्मा जीते जी ही मुक्ति पाता है, मरने के बाद नहीं। '**अवधू जीवत में कर आशा। मुए मुक्ति गुरु कहे स्वार्थी, झूठा दे विश्वासा।**', यदि जीवित मन बस हुआ नहीं तो '**पुनि देवे बहु त्रासा।**'। '**जहाँ आशा तहाँ बासा, मन का यही तमाशा।**' जब कभी मिली है मुक्ति तो जीते जी। वे महापुरुष जीवनमुक्त कहलाते हैं।

महात्मा बुद्ध को दो सौ जन्म के पश्चात् कैवल्य पद प्राप्त हुआ, बोधि प्राप्त हुआ। कागभुसुण्डि को एक हजार जन्म लग गए किन्तु अन्त में वही अविनाशी पद प्राप्त हुआ। भगवान कृष्ण के लिए आता है महाभारत में, कि प्राप्ति में दस जन्म लग गए। एक जन्म में बद्रिकाश्रम में ध्यानस्थ थे। एक कल्प में 'यत्र सायं गृह मुनि' के रूप में भ्रमण करते थे। जहाँ शाम तहाँ घर...। और उस पूरी साधना-काल में मौन रहे। एक कल्प में प्रभास क्षेत्र में क्षेत्रीय जनता को उपदेश करते हुए भ्रमण कर रहे थे। एक कल्प में पुष्कर

तीर्थ में यज्ञ करवा रहे थे... बारह वर्ष तक। वहाँ आप बहुत कृशकाय हो गए थे। कालान्तर में साधना इतनी उन्नत हुई कि विष्णु का अवतार कहलाए, वामन-अवतार कहलाए, लेकिन फिर भी थे अधूरे।

युधिष्ठिर घबड़ाए हुए थे। पाण्डवों का वनवास चालू हुआ ही था। पहला दिन था। अर्जुन ने कहा– "राजन्! इस कल्प में ये साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं, परमात्म स्वरूप हैं, परमात्म तत्व ही हैं जो आपके साथ हैं। आप चिन्ता ना करें, विजय आपकी होगी। ऐसा मैंने देवर्षि नारद से सुना है। दस जन्म के पश्चात् आज परमात्म-भाव, परमात्म-स्थित, परमात्म-स्वरूप, महायोगेश्वर हैं कृष्ण।

यह अवस्था कभी भी प्राप्त हो सकती है। बहुत से योगी ऐसे होते हैं, भजन करते-करते निवृत्ति हो चली है, साधना पूरी हो गई, केवल अब प्रवेश मिलना ही शेष था, परम चेतन का प्रतिबिम्ब पाना ही शेष था और आयु के दिन पूरे हो गए – ऐसे योगी की मुक्ति नहीं होती। उन्हें जन्म लेना पड़ेगा क्योंकि प्राप्ति नहीं हुई। किन्तु जन्म लेते ही थोड़ी सी साधना के पश्चात् तुरन्त वह स्थिति प्राप्त कर लेते हैं, क्योंकि उनके पूर्णत्व प्राप्ति में जन्म लेना ही माध्यम है, साधन नहीं। वे भजन तो पहले कर चुके हैं। ऐसे योगी भवप्रत्यय योगी कहलाते हैं। योगेश्वर भगवान कृष्ण इसी अवस्था वाले थे इसलिए वे बाल्यकाल से ही पूर्ण योगेश्वर हैं।

आदि शंकराचार्य को अठारह वर्ष की अवस्था में पूर्णत्व की प्राप्ति हुई, रामकृष्ण परमहंस देव को करीब पचास वर्ष के लगभग। हमारे गुरु महाराज को अड़तीस साल की अवस्था में। गुरु महाराज के पूर्णत्व प्राप्ति में केवल आठ साल लगा है। हमने कहा– भगवन्! इतना जल्दी क्यों? गुरु महाराज बोले– यह शंका हमको भी थी। तब फिर भगवान ने पिछले सात जन्म की रील मुझे दिखाया। सात जनम लगातार साधु हूँ। पिछले जन्म में निवृत्ति हो चली थी लेकिन दो-एक छोटी-छोटी इच्छायें मन में रह गयीं थी इसलिए जन्म लेना पड़ा।

भगवान कृष्ण कहते हैं– **'अनेक जन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।'** (गीता, 6/45)- शिथिल प्रयत्नवाला साधक भी अनेक जन्म चलते-चलते वहीं पहुँच जाता है जिसका नाम परम गति है, परम धाम है। आगे कहते हैं– अनेक जन्म साधन के परिणामस्वरूप जो प्राप्तिवाला जन्म है, वह ज्ञानी भक्त मेरा स्वरूप है। मैं उसमें हूँ और वह मुझमें है। मुझमें और उसमें कोई अंतर नहीं। कृष्ण ऐसा नहीं कहते कि मैं ही भगवान हूँ, और कोई पायेगा ही नहीं! 'उसमें और मुझमें कोई अंतर नहीं' अर्थात् महापुरुष जब अपनाता है तो महापुरुष ही बना देता है। जिस गुरुत्व में स्वयं निमग्न है उसी में निमग्न कर देता है। गुरु कभी शिष्य नहीं बनाता। जब बनाता है तो अपना ही प्रतिरूप, प्रतिबिम्ब बना लेता है। इसी आशय पर यह स्तुति है। इस प्राप्ति के पश्चात् महापुरुष संसार में जब तक रहता है तब तक लोकहित के लिए रहता है।

**'धरि स्थूलम्'**- वे स्थूल शरीर के आधारवाले होते हैं। कृष्ण कहते हैं– अर्जुन! मैं उस परम का स्पर्श करके, परम भाव में स्थित हूँ, अविनाशी तत्व स्वरूप हूँ; किन्तु हूँ इस मनुष्य शरीर के आधारवाला। जो मेरी इस स्थिति को नहीं जानते, आसुरी स्वभाव को धारण किए हुए मूढ़ लोग मुझे मनुष्य कहकर पुकारते हैं, तुच्छ कहकर पुकारते हैं। किन्तु जो दैवी संपद से युक्त भक्तजन हैं, अनन्य भाव से पूर्ण श्रद्धा से मेरा सुमिरन करते हैं, मैं उनका कल्याण साधनेवाला होता हूँ। पत्र-पुष्प-फल-जल जो अर्पित करते हैं, सेवन करता हूँ। यही है **'धरि स्थूलम्'**।

जो मुक्त हैं, जिन्हें अविनाशी पद प्राप्त है, जो गुणातीत हैं तो फिर वे हैं कहाँ? तो **'धरि स्थूलम्'**। यह स्थिति शरीर के जीते जी ही आती है। स्थूल शरीर में और प्राप्ति के पश्चात् महापुरुष का जीवन लोकहित में ही होता है; स्वयं के लिए तो कोई कार्य शेष नहीं रहा। उन्हें कर्म करने से न कोई लाभ है, न छोड़ने से कोई हानि। श्रीकृष्ण कहते हैं– मैं हूँ स्थूल शरीर के आधारवाला। हर महापुरुष और क्या होता है? प्राप्ति के पश्चात् भी शरीर के आधारवाला ही होता है। प्राप्ति के पश्चात् जो आयु के दिन शेष होते

हैं... शरीर के आयु के... वह समाज हित के लिए ही होते हैं। महापुरुष की हर चेष्टा मंगलमयी हुआ करती है।

**'काटन शूलं भव भारी'**–वे स्थूल शरीर का आश्रय लेकर **'काटन शूलं भव भारी'**- आवागमन, जन्म-मृत्यु के शूल को काटने में सक्षम होते हैं, इससे निवृत्ति दिलाने वाले होते हैं।

**'सूरत निज सोहम्'**– मन की दृष्टि का नाम सुरत है। उनकी सुरत **'निज सोहम्'**–स्वयं स्वरूप में सदा प्रवाहित रहती है, स्थिर रहती है, उससे कभी हटती ही नहीं। **'डोलत डिगै ना बोलत बिसरै, अस उपदेश दृढ़ावै।'** गुरु महाराज कहते थे– ''होऽऽ मोर स्वांस बांस की तरह खड़ी है। डोलते, बात करते, चलते, लेटते, उठते हर समय सुरतिया वहीं लगी हुई है।'' **'सूरत निज सोहम्'**– स्वयं स्वरूप में सदा प्रवाहित, संचारित रहती है, स्थित रहती है।

**'कलिमल खोहम्'**- वह कलयुग के मल को नष्ट करने वाले हैं। **'जन मन मोहन छवि भारी'**- साथ ही जन माने सेवक, शरणागत, भक्त के मन को मोह लेने वाले होते हैं। इन्हीं कारणों से संसार में उनकी महिमा है। उनकी छवि भारी है उनकी छवि का निखार है। इसी विशेषता की वजह से कि जन के मन को मोह लेते हैं, उठा लेते हैं, पकड़ लेते हैं।

**'अमरापुर वासी सब सुख राशी सदा एकरस निर्विकारी।'**

वे अमर अविनाशी केवल आत्मा हैं। वे आत्मतृप्त, आत्मस्थित हैं। **'अमरापुर वासी'**- और जो कुछ है, मृत है सृष्टि में। सत्य, अविनाशी, मृत्यु से परे तो केवल परमात्मा हैं। उस परम तत्व भाव, उस परम तत्व के निवासी हैं। जो **'सब सुख राशी'**- सम्पूर्ण सुख की राशि हैं वह धाम, वह पद। सब सुख किसी के पास नहीं दुनिया में। सृष्टि में किसी के पास सब सुख नहीं है, कोई न कोई दुःख जरूर पीछा करता है। कुछ एक बार सामग्री दिखाई भी पड़ गई कि दूध पूत से सब बरकरार हैं, इतने में आगे कोई नई चीज आ गई खतरे की। सब सुख-सम्पन्न एक परमात्मा ही हैं। भगवान राम

का चित्रण है–

**सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा।।**

**'जो आनन्द सिन्धु सुख राशि'**–आनन्द के समुद्र हैं, सुख की राशि हैं, सुख का ढेर हैं, खजाना लगा है, **'सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा।'**–वे सुख के धाम, उनका नाम राम है।

**'जो सुख राशी'**–राशि का अर्थ है कि हमारे पास भरपूर भण्डार है। **'सीकर तें त्रैलोक सुपासी'**–एक बूँद उस भण्डार में से, सुख में से किसी को छिड़क दिया, तीनों लोकों में वह सुपास पा जाता है। उसके लिए खतरा टल गया सदा के लिए। तो सद्गुरु उसी सम्पूर्ण सुख की राशि हैं और,

**'सदा एकरस निर्विकारी'**–उनके जीवन में अब उतार और चढ़ाव, उत्थान और पतन नहीं रहता। योगी के कर्म अशुक्ल व अकृष्ण हुआ करते हैं। विकारों से परे सदा निर्विकारी हैं।

**'अनुभव गंभीरा मति के धीरा, अलख फकीरा अवतारी।'** अनुभव तो महापुरुष की शरण जाने पर चार-छः महीने के अंदर ही जागृत हो जाता है। टूटी-फूटी सेवा, उनके द्वारा बताई हुई टूटी-फूटी साधना भी चार-छः महीने पार लग गई समर्पण के साथ, अनुभव जागृत हो जाएंगे, यदि अनुभवी महापुरुष हैं तो। सबके पास जागृत करने की क्षमता नहीं होती। ये विरले होते हैं लेकिन **'अनुभव गंभीरा'**–सम्पूर्ण अनुभव - यह सद्गुरु के पास होता है। 'भव' कहते हैं संसार को, आवागमन, जन्म-मृत्यु के चक्कर को। 'अनु' कहते हैं अतीत को। इससे अतीत करनेवाली विशेष जागृति है जिसका नाम अनुभव है – वह है परमात्मा की आवाज का पकड़ में आना।

जिस सतह पर हम खड़े हैं, जिस प्रभु की हमें चाह है वे उतर आए, हमारी आत्मा से अभिन्न होकर खड़े हो जाएं, और हमारा मार्गदर्शन करने लगें। यह संभव है, यह कल्पना नहीं है। यह अनुभवी सद्गुरु के द्वारा संभव है। तुलसी ने इस पर बल दिया कि **'मन बस होइ तबहिं, जब प्रेरक प्रभु बरजै।'**– आप लाख संयम करो, नियम करो, तप करो, जप करो, कोई लाभ

नहीं। यह मन तब वश में होता है जब **'प्रेरक प्रभु बरजै'**–प्रेरक के रूप में प्रभु उतर आयें और आपका रोकथाम करने लगे, साज-सँभाल करने लगें, तब वश में होता है।

उसी प्रभु के संचार-सूत्र का नाम अनुभव है और यह अनुभव आरम्भ, मध्यम, पराकाष्ठा... उसके बाद है गंभीर। सर्वस्व, सम्पूर्ण अनुभव से संपन्न है वे। **'अनुभव गंभीरा मति के धीरा'**–वे स्थितप्रज्ञ है जिनकी बुद्धि सदा धीर है, परिपक्व है।

**'अलख फकीरा अवतारी'**–उन महापुरुषों को कोई देख नहीं सकता आँखों से, कारण कि भगवान अचिन्त्य हैं, अगोचर हैं। चित्त का विषय नहीं हैं भगवान। इन आँखों से हम नहीं देख सकते भगवान को। वे अचिन्त्य, अगोचर हैं, चित्त का निरोध और इंद्रियों को संयम करके उस अविनाशी तत्व का स्पर्श और स्थिति वाले हुए, भगवत्ता को प्राप्त किया, तो भला आप किन आँखों से देख लोगे उनको? आप नहीं पहचान सकते।

तुलसीदास के पास एक भक्त पहुँचा। वह बोला– भगवन्! हमने संत को पहचान लिया। **'कोउ कहा संत हम चीन्हा, तुलसी कानों पर हाथ धर दीन्हा।'** तुलसीदास जी ने तुरंत कान बंद कर लिये, बोले– अरे रे, इससे बड़ा झूठ कुछ नहीं। तुमने किन आँखों से देखा? भगवान मन-बुद्धि से परे हैं। मन-बुद्धि का निरोध करके ही तो भगवत्ता में प्रवेश पाते हैं। उस भगवत्ता से वह जो भगवत्ता की प्राप्ति गुरुत्व है, उससे संयुक्त है, वही सद्गुरु हैं। जहाँ संशयों का अंत है वे संत हैं। भला तुमने कैसे पहचान लिया? तर्क से, बुद्धि-विलास से हम उन्हें नहीं जान सकते। उन्हें हम तब जान पायेंगे जब या तो वे स्वयं ही कृपा करके जना दें अथवा हमारा पुण्य-पुरुषार्थ इतना उन्नत हो कि भगवान कृपा करुणा करके आपका सहयोग कर दें। तो,

**संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥**

विशुद्ध संत उन्हीं को मिलते हैं, प्रभु जब कृपा करके किसी की ओर देख लेते हैं एक निगाह, पा जाओगे।

संत, सद्गुरु-प्राप्ति का दूसरा साधन थोड़ा लंबा है। **'पुण्य पुंज बिनु मिलहिं न संता।'**–पुण्य का पुंज प्रगट रूप में साथ नहीं देता, तब तक संत अथवा सद्गुरु नहीं मिलते। नहीं मिलने का अर्थ यह नहीं कि वे दिखाई नहीं पड़ते; दिखाई अवश्य पड़ेंगे। संत-सद्गुरु नहीं, साक्षात् भगवान शिव खड़े होंगे तब भी हम चार धक्का जरूर देंगे– देखो, कैसा रूप बनाए खड़ा है। दुनिया में कितनी फैक्ट्रियाँ हो गई कपड़े की। कौन-कौन वस्त्र चल गए.... टेरीकाट, टेरिलीन, रेडीमेड और इन्हें दो आने की लंगोटी नसीब नहीं। भइया! मोटान है, जान-बूझकर पशु की तरह नंगा घूम रहा है। कुछ न कुछ हम कह गुजरेंगे। कारण कि जिन आँखों से संत अथवा सद्गुरु पहचाने जाते हैं, वह दृष्टि पुण्यमयी है। **'पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता।'** मिल गये तो ठीक, नहीं मिले तो सिद्ध है कि कुछ कमी है। आप पुण्य अर्जित करें। वह पुण्य भी संतों के सान्निध्य और सेवा से ही और ईश्वर के प्रति श्रद्धा-समर्पण से ही आगे बढ़ेगा।

पुण्य-पाप दो शब्द ऐसे हैं - जो हमें पूर्णत्व की ओर ले चले वह पुण्य कर्म; और जो पतन की ओर ले जाय वह पाप कर्म। इतना ही अंतर है कुल। तो **'अलख फकीरा'**–वे लखने में नहीं आते। वे तब मिलते हैं जब करुणा करके अपने को दिखा दें। **'कै जाने जिय आपना कै जनावे पीव'**–वह प्रभु थोड़ा इशारा कर दें।

**'अलख फकीरा'.... 'फिकर फाड़ फकनी करे, ताहिं करे फकीर।'** वे सम्पूर्ण फिकर से मुक्त हैं और अवतारी हैं। वास्तव में परमात्मा उनमें सदा जागृत, स्थिर और विद्यमान है। अवतार योगी के हृदय में होता है, बाहर नहीं।

**'योगी अद्वेष्टा त्रिकाल द्रष्टा केवल पद आनन्दकारी।'** वे योगी साधारण नहीं, **'अद्वेष्टा'**–उनका शत्रु-मित्र कोई नहीं।

**विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।**
**शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः॥** (गीता, 5/18)

विद्या-विनययुक्त ब्राह्मण और चांडाल में... जो एक सियार लटकाए है पीठ पर उसमें... कुत्ता तथा गाय में, विशालकाय हाथी में **'पण्डिताः समदर्शिनः'**–जो पूर्ण ज्ञाता हैं वे समान ही दृष्टिवाले होते हैं। उनकी दृष्टि में न गाय धर्म है, न कुत्ता अधर्म है। न विद्या-विनययुक्त विप्र कोई विशेषता रखता है, न चांडाल कोई हीनता रखता है। कारण कि उनकी दृष्टि चमड़ी पर नहीं पड़ती, हृदय में स्थित आत्मा पर पड़ती है। वे केवल इतना ही समझते हैं कि एक साधक थोड़ा आगेवाली सीढ़ी पर खड़ा है, दूसरा नीचेवाली सीढ़ी पर खड़ा है, लेकिन हैं एक ही पथ के पथिक; अंतर नहीं। उसको उस जगह से जगा देंगे, ऊपर वाले कि तरह उस जगह से एड़ (सहायता) दे देंगे। इतना ही अंतर होता है। इसलिए वह **'योगी अद्वेष्टा'**–उनका किसी से द्वेष नहीं। वे सबमें शत्रु-मित्र नहीं, अपना-पराया नहीं, सबमें **'अद्वेष्टा'**।

**'त्रिकाल द्रष्टा'**– भूत, भविष्य, वर्तमान – तीन काल – न भूतकाल के संस्कार उन्हें घेरेंगे, न भविष्य की उन्हें चिन्ता; वे सदैव वर्तमान में ही स्थिर रहते हैं। तीनों कालों के वे द्रष्टा हैं, देखने वाले हैं। कोई काल उन्हें प्रभावित नहीं कर पाता। प्रगति और अगति की चिन्ता नहीं। समाज में कहावत है कि जो फ्यूचर (भविष्य) पर दृष्टि रखता है, वही कामयाब होता है संसार में, लेकिन इन महापुरुषों के लिए भविष्य कुछ नहीं, भूतकाल कुछ नहीं। वर्तमान भी उनके काम की वस्तु नहीं। वह अपने सहज में रहते हैं। तीनों कालों के वे द्रष्टा हैं - देखने वाले - उससे प्रभावित नहीं।

**'कैवल्य पद आनन्द कारी'**–कैवल्य पद – परम पद – उसके आनन्द में स्वयं निमग्न और **'कारी'**–उस आनन्द के संचारकर्त्ता के रूप में हैं वे। यही कारण है कि सद्गुरुओं के शरण में साधक पनपते हैं।

उन महापुरुष की रहनी क्या होती है? हो सकता है, सभी गुरु हो जायें। गुरु की एक विशेषता है। इस पर प्रकाश डालते हैं–

**'चित्रकूटहिं आयो अद्वैत लखायो, अनुसुइया आसन मारी।'**

एक चित्रकूट है पृथ्वी पर जहाँ भगवान राम ने तपस्या की थी। महासती

अनुसुइया और अत्रि की तपोभूमि। वह पवित्र स्थान तीर्थस्थान अवश्य है लेकिन एक चित्रकूट और है। तुलसीदास जी ने बड़ी प्रशंसा की है चित्रकूट की, वहाँ जानेवाले सुखी हो जाते हैं लेकिन फिर बाहरी चित्रकूट के स्थान पर एक अन्तरंग चित्रकूट पर प्रकाश डाला कि,

**रामकथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित्त चारु।**
**तुलसी सुभग सनेह बन, सिय रघुबीर बिहारु॥** (मानस)

रामकथा ही मंदाकिनी है। मन दागना, मन को संयत करना, यही मंदाकिनी है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार- चतुष्टय अंतकरण - ये कूटस्थ हो जाय, ये शुद्ध हो जाय, सुंदर व कूटस्थ हो जाय। **'चित्रकूट चित चार'**–कूटस्थ चित्त ही चित्रकूट है। **'सुभग सनेह बन'**–हार्दिक स्नेह ही वन है। **'सिय रघुबीर बिहार'**–जहाँ हार्दिक लगाव है, वहाँ भगवान सदा विहार करते ही हैं उस घट में। अर्थात् चित्त को कूटना ही चित्रकूट है।

चित्त तो इतना बड़ा जितना बड़ा संसार। चित्त के विस्तार ही का नाम जगत है। **'तुलसीदास कह चिद बिलास जग, बूझत बूझत बूझै।'** तुलसीदास जी कहते हैं, चित्त का पट-पसार ही जगत है। ऐसे वेग से दौड़नेवाले चित्त को समेटकर, संयत करके कूटस्थ कर लिया, अचल स्थित ठहर गया तो **'चित्रकूटहिं आयो'**- चित्त को कूटस्थ करके प्रकट हुए सद्गुरु।

**'अद्वैत लखायो'** और वह अद्वैत.... द्वैत माने प्रभु अलग, हम अलग; अद्वैत माने दर्शन, स्पर्श, प्रवेश और स्थिति वाले। **'अद्वैत लखायो'**–कैवल्य पद में स्थित सहस्त्रों तीर्थ की स्थिति और,

**'अनुसुइया आसन मारी'–**सुइया कहते हैं डाह को, जलन को, माया को। अनु कहते हैं अतीत को। माया से अतीत जिनका आसन है और वहाँ उनका निवास है। वहाँ उनका आसन सदा स्थिर है। वह वहाँ आसन मारकर बैठे हैं। देखने में सामने हैं लेकिन वस्तुतः उनकी रहनी माया से उपराम है।

**'श्री परमहंस स्वामी अंतर्यामी हैं बड़नामी संसारी।'**

**'श्री'** माने ऐश्वर्य, ईश्वरीय विभूति; उनसे संयुक्त **'परमहंस स्वामी'**–

सम्पूर्ण ईश्वरीय विभूति उनमें प्रवाहित है। **'परमहंस'**– **'प्रकृति पार पर सब उरवासी।'**- जो उस प्रभु से संयुक्त है, वह परमहंस है।

**'संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार।'**–वे संत, वे साधक हंस कहलाते हैं जो सांसारिक विषयरूपी वारि का त्याग कर देते हैं और ईश्वरीय गुणरूपी दूध में जीवनयापन करने वाले हैं। इस अवस्था में पहुँचने पर संत ही हंस हैं। वे दूसरा जीवन जी ही नहीं सकते। शेर को घास खिलाओ, वह जिएगा? मछली को पानी के बाहर पालो, जियेगी, चाहे मेवा क्यों न फेंको? ठीक इसी प्रकार हंस भी सिवाय अपने उस खुराक के बाहर जी ही नहीं सकता; वह हंसत्व से च्युत हो जाएगा।

वे संत हंस हैं, विषयरूपी वारि का त्याग करके ईश्वरीय गुणरूपी दूध पर ही जीवन जिनका टिक गया है, चलने वाले हैं और चलते-चलते जब परम तत्व परमात्मा का स्पर्श पाया, परम से संयुक्त हुए हैं, वे परमहंस हैं। यह योगी की, ईश्वर-पथ की पराकाष्ठा है। जितने हमारे भारतीय दर्शनशास्त्र हैं, इसी परमहंस रहनी पर जाकर मूक हो जाते हैं; आगे कुछ नहीं बताते।

**'श्री परमहंस स्वामी'**–अब वे स्वामी हैं, सेवक नहीं। मालिक हैं। **'अंतर्यामी'**–हृदय-देश के भावों को पढ़नेवाले हैं। कभी-कभी महाराज कहें– ''हो... आज एक अधिकारी आवत है, देख निकल न जाए। ओके कुछ उपदेश करैका है।'' इतने में कोई न कोई अवश्य पहुँच जाय। आगे चलकर वह बड़ा अच्छा साधक निकलता था। कभी कभी कहें– ''हूँ.... ससुरारी से कूँड़ा लेके चले आवत हैं। इन्हें खाये का दे, ओढ़े-बिछावे का देव, हर दे हरवाह दे, खोदे के पैना दे।'' हम बोले– महाराज! का है? गुरु महाराज बोले– ''कोई चला आवत है ढोंगी ढपाली।'' हम बोले– ''महाराज! दो रोटी देने में क्या हर्ज है?'' वह बोले– ''तू का जनिहे, कुपात्री को दान देने से दाता नष्ट हो जाते हैं।''

इतने में कोई न कोई पहुँच जाय... बकायदा फर्स्ट क्लास तिलक-विलक लगाए.... महात्मा वेशभूषा एकदम डेकोरेट... और उसे देखते ही महाराज

जद्द-बद्द कहना शुरू कर दें। इतने पर भी वह सीढ़ी से ऊपर चढ़ आए तब बैठने को दें, गांजा भी दें। वो जो कुछ मांगे, सारी व्यवस्था करें।

**'हंसन हितकारी'**–सो केवल भक्तन **'हितकारी'**। वहाँ केवल लगा है, यहाँ हंस लगा है। **'संत हंस...'**– ईश्वरीय-पथ पर ही जिनका जीवन निर्भर कर गया है, ऐसे हंसों को शनैः-शनैः तुरंत आगे बढ़ाने की प्रक्रिया.... उनका हित करने वाले होते हैं। इन साधकों के परम हितैषी हैं तो **'हंसन हितकारी'**।

**'जग पगु धारी'**–इसी उद्देश्य से जगत में कदम ही रखा है सद्गुरु ने। **'गर्व प्रहारी उपकारी'**–वे गर्व-प्रहारी हैं, गर्व पर प्रहार करके उपकार करने वाले हैं। अभिमानी को अपने अभिमान से नीचे उतरने में कष्ट होता है लेकिन गर्व जब तक नहीं हटेगा, तब तक उसका कल्याण कदापि नहीं।

एक बार नारद जी को बड़ा गर्व हो गया कि हमने कामदेव को जीत लिया। जीता तो तब कि जब लोग भी कहें, ताली बजावें, फूल-माला चढ़ावें कि वाह रे विजेता.... तब न मौज मिले। तो मौज लेने के लिए चले गए शंकर जी के पास। नारद जी बोले– ''अरे भोलेनाथ! पहले आप अकेले थे, अब हम हो गए दो। आप काम-विजेता, मैं काम-विजेता।'' शंकर भगवान बोले– ''अरे नारद! माया बड़ी प्रबल है। ये बात विष्णु भगवान से मत कहना। तुम शान्त रहो, अपना सुमिरन करो।''

नारद जी ने सोचा– ''हूँ... राख पोत के, जटा बढ़ाके बैठा भर है। किसी को फलते-फूलते देख नही सकता। बड़ा डाही है।'' आगे बढ़ गए, ''चलो, पिताजी से जरा कह दूँ।''

जब ब्रह्मा जी से कहा तो ब्रह्मा जी बहुत दुखी हुए, सोचे- ओह! हरि की माया का प्रभाव अनन्त है। **'बिपुल बार जेहिं मोहि नचावा।'**–अनन्त बार जिसने मुझे नचाकर रख दिया तो भला नारद चक्कर में पड़ जाय, कौन बड़ी बात है? वे बोले- देखो बेटा नारद! माया बड़ी प्रबल है, तुम हरि से मत कहना। नारद सोचे– ओह! पिता तो है लेकिन अपने ही बड़कई लेकर बैठा है; और लड़कों की भी उन्नति ये नहीं सह सकते। ये देवता बड़े डाही

लगते हैं। सीधा पहुँचे हरि के पास, बोले- ''हमने जीत लिया...'' भगवान ने रुखा बदन करके कहा- ''अरे नारद जी! जो आपका सुमिरन कर ले, उसके विकार खत्म हो जाते हैं तो भला स्वयं आपके लिए क्या कहना!''

**नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना॥**

'बड़े गर्व के साथ कहा' क्योंकि मानते थे कि अब तो जीत ही लिया, अब भला होना ही क्या है! 'सब आपकी कृपा!' फार्मेल्टी (शिष्टाचार) अदा किया नारद ने। भगवान ने देखा कि यह मेरा भक्त, मेरी शरणागत... यह तो चक्कर में पड़ गया। यह नष्ट हो जाना चाहता है।

आगे जब नारद बढ़े तो एक शीलनिधि की नगरी मिली। उसकी बहुत ही रूपसौंदर्यसम्पन्न एक कन्या मिली। **'देखि रूप मुनि बिरति बिसारी'**– वैराग्य सब चूल्हे में चला गया। **'बड़ी बार लगि रहे निहारी'** और लगे झूठ-सच बोलने। इसीलिए ज्योतिषी को नर्क होता है।

नारद जी अच्छे ज्योतिषी थे। राजा बोले– महाराज! आप उदास हो गए। बात क्या है? कन्या के लक्षण ठीक तो हैं? नारद जी बोले– हाँ, ठीक ही है। **'कछुक बनाइ भूप सन भाषे।'** बोले न झूठ-सच! तो नरक न होई त का होई। और भागे कि मिले कैसे। अच्छा तो रूप बढ़िया होगा तो मिल जायेगी।

नारद ने सोचा– हरि के समान तो हमारा हितैषी कोई नहीं। वे भागे भगवान की तरफ। मिले भगवान। भगवान बोले– ''अरे नारद जी! विकल की तरह कहाँ?''

नारद जी बोले- ''भगवन्! आप ही के पास..।''

भगवान ने पूछा– ''क्या काम है?''

नारद ने सोचा कि मैं यदि कहता हूँ कि हमें वह लड़की चाहिए, तो एक बार मैं डींग हाँक चुका हूँ कि मैं काम-विजेता हूँ, फिर लड़की माँगू? लोग कहते आये हैं कि **'काम क्रोध'**- ये भव फन्द हैं, **'नाथ नरक के**

**पंथ।'** ये अबै ज्ञान बघारै लगिहैं। ऐसा कुछ करो कि भगवान को थोड़ा छल लो।

नारद बोले- भगवन्! अपना हरि रूप दे दें। तो भगवान ने कहा- 'तथास्तु'। अनन्त रूप हैं भगवान के पास; एक पकड़ा दिया हरि रूप बंदर वाला। फिर नारद जी ने सोचा, फाइनल करवा लूँ। नारद बोले– देखो भगवन्! हमारा हित हो, वही करना। **'जेहि बिधि होहि नाथ हित मोरा। करउ सो बेगि दास मैं तोरा।।'**–मैं आपका दास हूँ, शरणागत सेवक हूँ। जिसमें मेरा हित हो, वही करना। तो भगवान बोले– अरे नारद! तू हित की बात करता है,

**जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार।**
**सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार।।**

जिसमें तुम्हारा परम हित होगा, शाश्वत हित होगा, वहीं हम करेंगे। हमारा वचन मृषा नहीं होता।

नारद उछलते-फुदकते पहुँच गए स्वयंवर में, सोचा, अब मिल जाने में क्या संदेह है! जब भगवान ने राइट (सही) कर दिया, भला उनका लिखा कौन टालेगा! वहाँ गये तो हँसाई ऊपर से हुई, कन्या को कोई और ले गया। फिर नारद जी भगवान को श्राप देने के लिए दौड़े कि **'देहउँ श्राप कि मरिहउँ जाई'**–मरने-मारने को तैयार हो गए।

बीच ही रास्ते में भगवान मिल गए, **'संग रमा सोइ राजकुमारी'**। उन्हें देखकर नारद को एकदम आग लग गई। वे बोले– शंकर जी को विष पिलाकर लक्ष्मी तब ले लिए रह्यो और हमके बंदर का मुँह बनाके इस बार राजकन्या को ले लियो...। और सन्न देना दो-चार श्राप दे दिये कि बन्दर का मुँह बनाया तो बंदर आपकी सहायता करेंगे; जैसे मैं औरत के लिए रो रहा हूँ तोहऊँ रोइहो। पत्ती-पत्ती से ना पूछौ तो हमहूँ बाबा नहीं। सारी साधुआई दाँव पर चढ़ा दिया।

**जब हरि माया दूरि निवारी। नहिं तहँ रमा न राजकुमारी।।**

भगवान ने माया का वह आवरण हटा लिया। न राजकुमारी, न लक्ष्मी। लक्ष्मी जो भगवान की अर्धांगिनी... वह भी नश्वर; और वह राजकुमारी भी नश्वर। शाश्वत कुछ और। आगे जब उस पर दृष्टि पड़ी तो नारद लगे काँपने। वह बोले– "प्रभो! मुझे तो आपने बचा लिया, मैं तो समाप्त हो गया था। भगवन्! हमने दुर्वचन कहे, पाप कैसे मिटे? प्रभु हमारा श्राप झूठ हो जाए। प्रभो! मेरा श्राप, मेरा दुःख कैसे मिटे?, पाप कैसे मिटे?

भगवान का स्वभाव है– **'उर अंकुरेउ गरब तरु भारी। बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी।।'** तो **'गर्व प्रहारी'** सद्गुरु। **'गर्व प्रहारी उपकारी'**–आपके गर्व को हटा देना एक बहुत बड़ा उपकार है। **'सकल सोक दायक अभिमाना।'**- सारे दुःखों की जड़ अभिमान है। साधक में गर्व होना स्वाभाविक है। कहीं न कहीं उसको नशा हो ही जाता है। किसी-किसी को बोलने का नशा, जो कुछ है ही नहीं। किसी को अपनी रहनी का नशा... यह भी भगवान मिटा देते हैं, मिटाकर उसका कल्याण कर देते हैं। यही सर्वोपरि, परम उपकार कर देते हैं तो **'गर्व प्रहारी उपकारी'**।

**'सतपंथ चलायो भरम मिटायो रूप लखायो करतारी।'**

वह सत्य.... शाश्वत सत्य एक परमात्मा है। **'सत्य वस्तु है आत्मा, मिथ्या जगत पसार। नित्यानित्य विवेकिया लीजै बात विचार।।'**- सत्य वस्तु केवल आत्मा है और जगत का पट-पसार नश्वर, क्षणभंगुर, स्वप्नवत्। तो **'सतपंथ चलायो'**- जो शाश्वत सत्य है आत्मा, वे परमात्मा - उस पथ पर चलाने वाले... चलाता तो कोई किसी को है... कोई ट्रैक्टर चलाता है, कोई हल जोतने में बैल चलाता है। ये साधकों को सतपंथ पर **'चलायो'**- चलानेवाले हैं।

हमारे अंदर यदि भ्रम होगा तो हम नहीं चलेंगे तो **'भरम मिटायो'**– सम्पूर्ण भ्रम को मिटाते हुए **'रूप लखायो करतारी'**– और वह स्वरूप लखाया पथिकों को कि क्रिया कैसे की जाती है! करते जाओ और पार होते चले जाओ। एक नाम करतार भगवान का है। जहाँ नाम है, उसके साथ अर्थ

जुड़ा हुआ है। वह क्रिया जागृत किया, बोले- तुम चलते जाओ बेटा! करो और तरो। अर्थात् योगविधि सद्गुरु से ही जागृत है, उन्हीं की देन है। वह रूप लखाया जो करतार का है। इन्हीं विशेषताओं को देखकर साधक समर्पण करता है और कुछ माँगता है,

**'यह शिष्य है तेरो करत निहोरो मोपर हेरो प्रणधारी।'**

यह शिष्य आपका है, आपकी शरण हूँ। मैं आपसे अनुरोध करता हूँ, प्रार्थना करता हूँ, **'करत निहोरो'**–समर्पण के साथ अनुनय-विनय, प्रार्थना करता हूँ। **'मोपर हेरो प्रणधारी'**– मुझ पर सदा दृष्टि बनी रहे। आपका प्रण ही है कि शरणागतवत्सल, शरणागत-भयहारी तो अपनी उस विरुदावली को स्मरण कर, उस विरुदावली की देखते हुए भगवन्! आपकी ऐसी विरुदावली को जानकर मैं शरण में आया हूँ कि मुझ पर सदा दृष्टि बनी रहे। तो **'जाके रथ पर केशो ता कहँ कौन अंदेशो।'**

गुरु नानक ने कहा- प्रभो! एक आशीर्वाद दें कि मैं आपको भा जाऊँ, प्यारा लगने लगूँ। बस! **'मोपर हेरो प्रणधारी'**।

**'जय सद्गुरुदेवम्'**- सद्गुरु परम देव हैं, परमानन्द-स्वरूप हैं। वे अविनाशी-पद-प्राप्त अमर हैं। **'अमर शरीरं अविकारी'**–वे शरीरों के जन्म-मरण के विकारों के बंधन से अतीत हैं। वही सदा विजेता हैं। यहीं पर, इसी स्वरूप में आपकी शाश्वत जय है। उनकी सदा जय हो।

उनकी क्या जय हो, उनकी तो जय है ही। वह विजेता हैं इसलिए जय शब्द उनके साथ लगा हुआ है। वे सदा जीते हुए हैं। वे जितेंद्रिय हैं, प्रकृति पार हैं, कालजयी हैं, स्वरूपस्थित हैं। ऐसे गुरुदेव की मैं सदा जय करता हूँ अर्थात् प्रार्थना करता हूँ। जय दूसरे शब्दों में होता है समर्पण।

**॥ बोलो श्री गुरुदेव भगवान की जय ॥**

# सेवा

आज का प्रश्न है सेवा! सेवा हम किसकी करें और कैसे करें?

**साधु वहीं जो सेवा जीते, सेवा सद्गुरु पावै।**
**कहत कबीर सुनो भाई संतो, जो वह गुफा लखावै॥**
**शब्द सों प्रीति करे सोइ पावे॥**

जो सद्गुरु की सेवा को जीतते हैं वही दुनिया में साधु हैं। सेवा एक संग्राम है। यह सबके वश का नहीं है। चार दिन बाद कहीं न कहीं लोग उलझ कर खड़े हो जाते हैं कि किसकी सेवा करें? जो '**सेवा सद्गुरु पावे**'–यदि सद्गुरु की सेवा मिल जाय। क्या पहचान है सद्गुरु की?

**कहत कबीर सुनो भाई संतो, जो वह गुफा लखावै॥**
**शब्द सों प्रीति करे सोई पावै॥**

जो उस गुफा को लखा दे, जहाँ से शब्द प्रसारित होता है और फिर शब्द से जो प्रीति करे, वह प्राप्त कर लेता है। भगवान कैसे समझाते-बुझाते हैं, उसका नाम है शब्द। भगवान् की अपौरुषेय वाणी का नाम है शब्द। शब्द से जो प्रीति करेगा, अवश्य प्राप्त कर लेगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। सेवा सद्गुरु की करनी चाहिए।

बाल्मीकि से भगवान श्रीराम ने पूछा कि– मैं रहूँ कहाँ? तो बाल्मीकि जी ने कहा कि– कहाँ नहीं है आप? एक जगह खाली बता दें, जहाँ आप न हों?

**पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।**
**जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ॥**

**जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥**
**भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥**

**लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे।।**
**निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी।।**
**तिन्ह कें हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक।।**

**जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।**
**मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु।।**

**प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा।।**
**तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं।।**
**सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी।।**
**कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा।।**
**चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं।।**
**मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा।।**
**तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना।।**
**तुम्ह ते अधिक गुरहि जियँ जानी, सकल भाव सेवहिं सनमानी।।**

**सबु करि मागहिं एक फल राम चरन रति होउ।**
**तिन्ह कें मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ।।**

भगवान्! आप से भी बढ़कर सद्गुरु को जानकर, सम्पूर्ण भावों से जो भजता है और बदले में एक वर मांगता है कि प्रभु! आपका दर्शन हो। उनके मन-मंदिर में आप निवास करें। वही आपके लिए पवित्र घर है। तो सद्गुरु की ही सेवा का विधान है।

*** नवधा भक्ति का उपदेश प्रभु राम ने दिया माता सबरी को-**

**प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।**

भक्ति का प्रथम चरण है संतों का संग। द्वितीय चरण है, जब संतों का ही संगत है तो वे अवश्य बताएंगे भगवान का भजन कैसे करें? वे कहाँ रहते हैं? कैसे ढूँढ़े? वह है कथा और प्रसंग, उसमें प्रीति। और कथा-प्रसंग का जब सारांश निकला तो वही सेवा सद्गुरु की।

**गुरु पद पंकज सेवा, तीसरी भगति अमान।**
**चौथी भगति मम गुन गन करहिं कपट तजि गान॥**

गुरु के चरण कमलों की सेवा – ये तीसरी भक्ति है। और चौथी भक्ति है– कपट का त्याग करके मेरा गुनगान। और, **'मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा।'-** गुरु से मंत्र जागृत हो जाएगा और एक प्रभु में सुदृढ़ विश्वास हो जायेगा। क्रमशः स्तर उठता ही जायेगा।

**मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥**

उत्तरोत्तर अवस्था बढ़ती गई। तो भजन की जागृति सतगुरु से। यह है सेवा। सेवक कितना भी अवगुणी हो फिर भी महापुरुष, भगवान कभी नहीं त्यागते। **'जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परे जनि भोरें॥'** सेवक को प्रभु कभी भूलते ही नहीं, कारण कि–

**सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें॥**

सेवक और सुत **'पति मातु'** भरोसे रहते हैं। पति माने परमात्मा, मालिक, स्वामी। करोड़पति माने करोड़ों रुपयों का मालिक। गृहपति = घर का मालिक, और सब का पति। भगवान का एक संबोधन है मालिक। सेवक उस स्वामी के भरोसे और सुत माता के भरोसे निश्चिन्त रहते हैं। **'रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें।-** असोच रहते हैं, प्रभु को परवरिश करना ही पड़ता है।

भगवान की एक विरदावली है कि–

**समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ॥**

मुझे सब समदर्शी कहते हैं लेकिन एक जगह मेरी समदर्शिता लड़खड़ा जाती है। सब दिखाई पड़े और सेवक दिखाई पड़ जाए तो सीधी दृष्टि उसी पर पड़ती है। **'सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ'**–वह सेवक मुझे प्रिय है जिसकी अनन्य गति हो, मुझे छोड़कर अन्य किसी देवी-देवता को न भजता हो, केवल मेरे आश्रित हो।

**सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।**
**मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।।**

वह अनन्य है जिसकी ऐसी बुद्धि कभी विचलित नहीं होती कि मैं हूँ सेवक और हमारे प्रभु चराचर में, सर्वत्र व्याप्त हैं। सर्वत्र, सब समय मुझे देखते हैं, सब समय सुनते हैं। आप सोचोगे कि गुरु महाराज तो आश्रम में हैं, यहाँ है ही नहीं तब तो भूल कर बैठोगे।

हमारे गुरु महाराज कहा करें– होऽ गुरु, भगवान और माया – तीनों सर्वत्र, सब समय रहते हैं। तिल भर भी कोई ऐसी जगह नहीं है, जहाँ वह न हों!

इसलिए वह अनन्य है कि मैं सेवक सचराचर... चराचर माने चर-अचर सबमें व्याप्त। **'रूप स्वामि भगवंत'**–वहाँ स्वामी का रूप, भगवान का रूप विद्यमान है। सेवा के भी कुछ नियम होते हैं। सेवक के पीछे भी खतरे ही मँडराया करते हैं। लक्ष्मण वन में भगवान राम की सेवा में जाने लगे तो उनकी माता सुमित्रा ने आदेश दिया कि–

**रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू।।**

राग है, रोष है.... राग माने लगाव। और वस्तु न मिलने पर रोष हो जाता है.... क्रोध, रोष, ईर्ष्या, मद, मोह। **'जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू'**- स्वप्न में भी इनके वश में न होना।

**सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई।**

सभी प्रकार से विकारों को त्यागकर मन, क्रम और वचन से सेवा करना। लक्ष्मण! सीता ही माता है, राम जी तुम्हारे पिता हैं, जाओ।

## * शूर्पनखा–

पंचवटी में शूर्पनखा पहुँच गई, बोली– आओ हमसे विवाह कर लो। साधकों के सामने घोर जंगल में भी विघ्न आते हैं।

**सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी।।**

**पंचबटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा।।**
**भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी।।**
**होइ बिकल सक मनहि न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी।।**
**रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई।।**
**तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी।।**
**मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहु नाहीं।।**
**तातें अब लगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहि निहारी।।**

भगवान श्रीराम ने कहा– हमारा विवाह हो चुका है, ये सीता है। शूर्पनखा बोली– यह कौन है? भगवान राम बोले– यह मेरा अनुज है। शूर्पनखा बोली– यह भी तो ठीक ही है। लक्ष्मण ने कहा–

**सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा।।**

मैं उनका दास हूँ – सदा पराधीन — यहाँ तुम्हें सुविधा नहीं मिलेगी। क्यों महारानी बनते-बनते दासी बनना चाहती हो? सेवा का ऐसा नियम है कि '**सेवक सुख चह मान भिखारी। ब्यसनी धन सुभ गति बिभिचारी।।**'- सेवक सुख चाहता हो, भिखारी मान चाहता हो, व्यसनी धन चाहता हो, व्यभिचारी सद्गति चाहता हो, '**लोभी जसु चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी।।**'—लोभी यश की कामना करे और अभिमानी चारो फल (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) की आशा करे तो ये सभी प्राणी आकाश को दुहकर दूध लेना चाहते हैं।

## * भरत—

भरत जब पहुँचे राम जी के पास, वशिष्ठ ने परिचय दिया–

**भरतहि धर्म धुरंधर जानी। निज सेवक तन मानस बानी।।**

भरत को धर्म की धुरी धारण करने वाला समझो। भरत मन-क्रम-वचन से आपका अंतरंग सेवक हैं। भरत ने पहले तो अपना तर्क दिया, लेकिन बाद में सँभल गये। भरत ने स्वयं निर्णय लिया कि,

**जो सेवकु साहिबहि सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची।।'**

जो सेवक स्वामी को संकोच में डालकर अपना हित चाहता है, उसकी बुद्धि भ्रष्ट है, गयी गुजरी है, निकृष्ट है।

**सेवक हित साहिब सेवकाई। करै सकल सुख लोभ बिहाई।।**

सेवक का हित है साहब की सेवा, स्वामी की सेवकाई करने से। स्नेह के साथ इस ढंग से सेवा करें कि सकल सुख और सारे लोभ को दूर हटा दे।

**सहज सनेहँ स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई।।**

सहज सनेह से स्वामी की सेवा करें, प्रेम से करें। स्वार्थ, छल और कपट दूर फेंक कर सेवा करें।

अब सेवा कैसे करें?–

**अग्या सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जन पावै देवा।।**

भरत ने कहा– आज्ञा पालन के समान अच्छे साहब की कोई सेवा नहीं। प्रभो! हमें आदेश दें कि मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँ। हे देव! यही प्रसाद ये सेवक चाहता है। भगवान ने कहा– भरत! तुम जाओ, चौदह वर्ष बाद मैं आऊँगा, तुम्हारा भार हल्का कर दूँगा, मैं अपना राजपाट ले लूँगा। भरत ने खड़ाऊँ लिया और चले आये।

**सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुशासन माने जोई।।**

वह सेवक है, प्रिय से भी प्रिय है, अति प्रियों से भी उत्तम है जो मेरे आदेश का पालन करे।

गुरु महाराज जब देहरादून की ओर विचरण में थे, जंगल में एक कच्ची सड़क दिखाई पड़ी। वे चलने लगे। महाराज ने कहा- मैं यह सोचा करूँ कि सड़क है तो कहीं गाँव-ग्राम भी अवश्य होगा। लेकिन वह वन विभाग वालों का जंगली रास्ता था। आगे ज्यों-ज्यों बढ़ें, जंगल और भी घना होता चला गया। हाथियों की ताजी लीद पड़ी थी।

सुबह से चलते-चलते शाम हो गई। जंगल में एक विशाल वृक्ष के नीचे महाराज ध्यान में बैठ गए। महाराज का चलना भी भजन ही था। वे कहीं जाते नहीं थे। मन-क्रम-वचन से सुरत को हृदय में लगाकर, प्रभु के चरणों के ध्यान में लगे रहते थे, और शरीर से एक भाव से आगे बढ़ते रहते थे। यही उनके विचरण का तरीका था। इसका नाम है सचेतावस्था का ध्यान, चलित ध्यान। अपने लक्ष्य के लिए सदा जागरूक रहते हुए कदम बढ़ाओ, भूल ना जाओ, भगवान से सुरत हट न जाए ।

जब पेड़ के नीचे बैठ गए तब भगवान ने कहा– बैठना चाहते थे बैठो फिर यहीं पर! यहाँ तुम्हारे लिए बढ़िया आश्रम बन जाएगा। पत्ते-पत्ते में लट्टू लग जाएंगे। लट्टू माने बल्ब लग जाएंगे, नया आविष्कार था बल्बों का। और कहा– तुम्हें यहाँ स्थिति मिलेगी, स्वरूप का दर्शन होगा। तुम्हारे द्वारा लोगों का बहुत कल्याण होगा। भगवान ने बहुत कुछ बताया।

निश्चिन्त होकर महाराज बैठ गए। चार दिन बीत गए, ना पानी पिए, न खाना खाए, न कहीं गए। चौथे दिन भगवान ने ब्रह्मबेला में कहा– बैठे भर रहो, सब वैसे ही होगा, यथावत् होगा, लेकिन एक सिपाही दूध लेकर आ रहा है उसको पीना मत।

महाराज ने सुन लिया और थोड़ी देर में भूल भी गए। इतने में सिपाही पहुँचा दूध का कटोरा भर के। महाराज! दूध का सेवन कर लें! तब महाराज को याद आया कि भगवान ने कहा है कि सिपाही दूध लेकर आएगा, पीना मत। अब इससे कैसे कह दें कि भगवान ने मना किया है। कोई विश्वास करेगा क्या? कभी नहीं ! यह तो वही विश्वास कर पाता है जब आपको भी भगवान वह जागृति दें, तब समझ में आए। तो महाराज ने कहा– देखो, फिर कभी कुछ लाओगे हम ले लेंगे, हमारा व्रत है, हमें ऐसे ही बैठे रहने दो। आज हम दूध नहीं पियेंगे, न कुछ लेंगे।

तब सिपाही बोला– अरे महाराज! हम लोग इतने पापी हैं? जब साधारण सेवा भी आप स्वीकार नहीं करोगे तो हम गरीबों का कल्याण कैसे होगा?

अट्ट-बट्ट लगा बोलने– महाराज! मैं फारेस्ट का सिपाही हूँ। चार दिन से रोज दूर से, नजदीक से आपको देखा करता हूँ। आप इस पेड़ के नीचे से उठकर कहीं नहीं गए। भगवन्! क्षमा करें, कृपा करें, दूध पी लें, नहीं तो कल्याण कैसे होगा।

वह एक घंटा अट्ट-बट्ट कुछ ना कुछ बोलता ही चला गया। बड़ा वाचाल रहा। तो झुँझलाहट में महाराज उससे जीव छुड़ाने के लिए बोले– ससुरा ना तो चुप्पई रहत है न चलइ जात है! यह कहते हुए महाराज ने उठाया कटोरा, दूध पी लिया और कटोरा दे दिया। सिपाही बहुत खुश हुआ, सादर प्रणाम किया और चल दिया। सिपाही थोड़ी दूर ही गया होगा, भगवान ने गुरु महाराज से कहा– उठो, अब यहाँ कुछ नहीं होगा। न आश्रम बनेगा, न तुम्हें भगवान का दर्शन होगा, न स्थिति मिलेगी और न ही कल्याण होई। भागो यहाँ से...! कहा था न कि दूध मत पीना... पी लिया न...

**रेख लाँघि सिय बाहर आई। बिधि बस कर्म काल कठिनाई।।**

भगवान जो सीमारेखा निश्चित कर दें उनका कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिए। वह पाँव यहाँ रखने को कहते हैं तो चार इंच बाएं मत रखो, दाएं मत रखो, सीधे चलो। आज्ञापालन.... अक्षरशः आज्ञापालन – इसी का नाम सेवा है। आज्ञापालन का नाम ही भजन है।

महाराज कहैं– होऽ चार दिन के भूखे थे, पेट भर खाना भी नहीं मिला और भगवान डांट-फटकार के भगा दिए। बस हम चूक गए यार...। हमें कोई भूख नहीं थी, जिउ छुड़ाने के लिए कि ससुरा न तो चुप्पई बैठत है और न चलेउ जात है, झुंझलाहट में उसको दूर करने के लिए पी गए। पी रहे थे तब तक भगवान मना नहीं किये। जब पी लिया तब डाँटना शुरू किए– एक बार आदेश दे दिया तो क्यों पिया? इसीलिए आज्ञापालन ही भजन है।

हम जब गुरु महाराज की शरण में गए तो भजन हमारी समझ में आया, सेवा न समझ में आवे। यह झाड़ू लगाओ, यह करो, वह करो... हम सोचें कचरा पड़ा है तो हर्जा क्या है? कैसे साधु हैं, कहते हैं कि झाड़ू लगाओ।

हम उस समय नवाड़ी थे। हम सोचें– जब हम झाड़ू ही लगाते रहेंगे तो भजन कब करेंगे?

तीन साल बीत गया, चौथे साल में यह आदेश हुआ– तुम्हारी अपेक्षा जो साधक सेवा में लगे हैं इनकी साधना और आगे है। तूँ पिछड़ता जा रहा है। हम घबड़ा गए, सोचा– रात-दिन भजन कर रहे हैं लेकिन ये सेवा करनेवाले हम से आगे चल रहे हैं। इसीलिए महाराज सेवा करवाते हैं....

तब हम लगे रास्ते पर दिन के बारह बजे झाड़ू लगाने। हमें ये भान ही ना रहे कि कहाँ सेवा करै के चाही। महाराज कहें– ई पगला के देखो! करे, झाड़ू सुबह लगत है कि दोपहर में? तब हम बोले– महाराज! सफाई तो हो ही जाती है, हमें समय से क्या मतलब! हमें आपकी सेवा से मतलब है।

गुरु महाराज हँसने लगे, बोले– एही बौचट के देखो, कइसन-कइसन बतियावत है।

और हम लगे रहें सेवा में कुछ ढूँढ़ के। फिर ड्यूटी भी मिली सेवा की – भंडारी के साथ रहो, तो भंडारी जी की मदद किया करें उल्टी-सीधी। गुरु महाराज ने एक दिन बुलाया, बोले– देख, यह सेवा जरूरी है। बाहरवाली सेवा के बिना भीतरवाली जागृति ना होई। हमसे श्रद्धा से सम्बन्ध जुड़ जाएगा तो भीतरवाली जागृति हो जाएगी। श्रद्धा में कमी आ जाएगी तो भीतर से भगवान बताना बंद कर देंगे। यदा-कदा कहेंगे, शिथिलता आ जाएगी। भीतर भी मैं ही बोलता हूँ, बाहर भी मैं ही कहा करता हूँ। दोनों एक है, दो नहीं है। तू सोचत है, भीतर से भगवान् बोलत हैं, बाहर से गुरु महाराज बोलते हैं – इस मूर्खता में मत पड़ना। भीतर भी मैं ही बोल रहा हूँ, बाहर भी मैं ही बता रहा हूँ। यह बात हमें बहुत देर से समझ में आई।

गुरु महाराज ने आगे कहा– बाहर सेवा कर लेकिन इससे भी सूक्ष्म, प्रत्यक्ष फल वाली सेवा है – हमारे स्वरूप को हृदय में पकड़। शीशे में जैसे मुँह दिखाई देता है, वैसे ही स्वरूप हृदय में दिखाई पड़े। चरण देखो, नाखून देखो, सुरत को स्थिर कर लो। दो-चार ग्रास भोग-राग लगा दिया, पानी पिला

दिया, धूप भी कर दिया। फिर लग जाओ स्वरूप में, चरण में।

**श्रीगुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती।।**

पद और चरण के अगूँठे के नाखून में सूरत को स्थिर कर लो। शीशे में जैसे अपना मुँह दिखाई देता है, ऐसे ही चरण स्पष्ट दिखाई दें तो ध्यान बढ़िया है।

यह है मानस सेवा। स्वांस में सूरत को लगाओ। स्वास आई तो ओम्... ओम्... ओम्.... ओम्....। राम कहते हो तो राम-राम-राम। नाम, रूप, लीला और धाम - कहीं न कहीं मन को लगाए रखो। मन को छुट्टी मत दो। मन को यदि भजन से छुट्टी दोगे तो यह माया में जाएगा। मन एक ऐसा यंत्र है कि छुट्टी लेता ही नहीं। इसको छुट्टी नहीं दी जा सकती। यह अपनी हरकत तब छोड़ता है, जब मर जाता है। तो–

**मन मरा माया मरी, हंसा बेपरवाह।**
**जाका कछु न चाहिए सोई शहंशाह।।**

इसलिए हर समय चिंतन में मन लगाए रहो।

**जागत में सुमिरन करै, सोवत में लव लाय।**
**सुरत डोर लागी रहै, तार टूटि ना जाए।।**

यह अंतरंग सेवा है। यह सुरत से, चितंन से, श्रद्धा से, चित को ध्यान में लगाने से संपन्न होती है। हम बाहर जो सेवा करते हैं, इससे भजन की पटरी पर गाड़ी आ गई तो रात-दिन करो। उससे सूक्ष्म और प्रत्यक्ष फलवाली यह हमारी ही सेवा है। यह हमारा आदेश है।

हमने सोचा कि हमसे सेवा पार नहीं लगी कायदे से, इसीलिए संतोष दे रहे हैं गुरु महाराज। हम बोले– संतोष तो नहीं दे रहे कहीं..? यदि सेवा ही से भगवान मिलते हो तो हम रात-दिन फरसा चलाएंगे।

फिर आहिस्ते-आहिस्ते समझ में आई यह बात कि सेवन करने का मतलब सेवा है।

कागभुशुण्डि को भगवान् श्रीराम ने दर्शन दिया तो आदेश दिया–

**सत्य कहउँ खग तोहि, सुचि सेवक मम प्रानप्रिय।**
**अस बिचारि भजु मोहि, परिहरि आस भरोस सब॥**

काग! मैं तुम्हें सत्य कहता हूँ, शुद्ध सेवक मुझे प्राणों के समान प्यारे होते हैं–ऐसा विचार करके मेरा भजन कर। सारी आशाएं और भरोसा त्यागकर, **'अस बिचारि भजु मोहि'** अर्थात् मेरा भजन कर। प्रभु के चितंन से मन भागे न। भजन से भागो मत। इसका नाम है भजन। तो कैसे करें सेवा? **'परिहरि आस भरोस सब'** अर्थात् अनन्य चिन्तन का नाम सेवा है।

## * महाराज मनु–

सृष्टि चक्र उन्हीं का था। जो कुछ था, सब उनका था। देवलोक उनका बसाया हुआ। धन-धान्य की तो कमी नहीं लेकिन–

**होहि न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन।**
**हृदयँ बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु॥**

हृदय में अपार दुख लगा- **'हृदयँ बहुत दुख लाग'**–बगैर भजन के जन्म बीत जाना चाहता है। विषयों से तो वैराग्य ही नहीं होना चाहता। बरबस राजपाट पुत्र को दिया और भजन के लिये निकल गये।

दुःख किस बात का था? सृष्टि में जो कुछ था – देवलोक, स्वर्गलोक, मृत्युलोक – सब उन्हीं का बसाया हुआ था। धन की तो कभी कमी ही नहीं थी, दुःखी पता नहीं क्यों थे? दुःख इस बात का था कि विषयों से वैराग्य नहीं हो रहा है, और बगैर हरि के भजन के जीवन बीत जाना चाहता है। बरबस राजपाट दिया पुत्र को और गए नैमिषारण्य। वहाँ साधकों से मिले, ऋषियों से मिले, भजन-साधना की विधि समझा और शांत-एकांत में भजन में लग गए। जहाँ भजन में लग गए तो विचार करने लगे– मैं किसका पुजारी हूँ? आखिर भजन किसका करना चाहिए?

**अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथबादी॥**

वह गुणों से अतीत है, अखंड है, अनन्त है, अनादि है। परमार्थ के पथिक सदा जिसका चिन्तन किया करते हैं, और,

**संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना।।**

ये अनन्त ब्रह्मा, विष्णु और महेश जिसके अंस से उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं,

**ऐसउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीलातनु गहई।।**

ऐसे भी कोई प्रभु हैं जो सेवक के बस में होते हैं। भक्तों के हित के लिए लीला से यह शरीर को धारण कर लेते हैं, भक्त के शरीर को अपना निवास बना लेते हैं।

**जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा।।**

वेद का यह वाक्य सत्य है कि भगवान ऐसे सेवक के बस में हैं तो मेरी अभिलाषा अवश्य पूर्ण होगी।

**पुनि हरि हेतु करन तप लागे। बारि अधार मूल फल त्यागे।।**

फिर तपस्या में लग गए। अब तक सेवन कर रहे थे... मन-क्रम-वचन से काम का, क्रोध का, लोभ का, मोह का, राग का, द्वेष का। संयमित किया इन्द्रियों को, मन को; और सब ओर से समेट के लगा दिया हरि के चिन्तन में। अब तक सेवन करते थे वासनाओं का; अब सेवन कर रहे हैं प्रभु का। यही है विशुद्ध सेवा। सेवक को गद्दार, धूर्त, कपटी नहीं होना चाहिए।

**सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी।।**

## * सेवक कैसा होना चाहिए?-

**सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिबु होइ।**
**तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ।।**

सेवक तो हाथ-पाँव-आँख-कान जैसा होना चाहिये और स्वामी मुख जैसा होना चाहिए। मुख खाना खाता है, हाथ-पाँव-नाक-कान, एड़ी से चोटी तक सबको बराबर तरोताजा कर देता है, सबको उचित पौष्टिकता दे देता है।

मुख जैसा स्वामी होना चाहिए, '**कर पद नयन**' जैसा सेवक होना चाहिए। कहीं सिर में खुजली हुई तो हाथ सेवा कर देता है। जब कहीं काँटा लगा तो हाथ पहुँच जाते हैं। आगे चलना है तो पाँव पहुँच गया। आँख सब देखकर सूचना देती है, कान सुनकर। सेवक को इस प्रकार सदा तत्पर होना चाहिए। विद्वतजन ऐसे ही सेवकों की सराहना करते हैं। फिर प्रभु की सेवा में एक चीज और है– '**सेवक सेब्य भाव बिनु....**'- मैं सेवक हूँ, प्रभु मेरे सेव्य हैं, मेरे आराध्य हैं, मैं उनके चरणों में समर्पित सेवक हूँ – यह भाव हर समय होना चाहिए। तो,

**सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।**

तो सेवक भाव है तो सेवा कैसे करें?

**भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि।**

राम के चरण-कमलों का भजन करो। वे हमारे स्वामी हैं और मैं सेवक हूँ–ऐसा सिद्धांत सुदृढ़ करके, फिर उन्हीं प्रभु का भजन करो, उनका सेवन करो। वृत्ति दाहिने-बाएं बहकने न पाए। यह है सेवा। यह चिन्तन से, सुमिरन से, सुरत को ध्यान में लगाने से सम्पन्न होगी।

प्रभु को तो हमने देखा नहीं, सेवा शुरू कहाँ से करें? सेवा की शुरुआत नाम से ही होती है।

**सेवक सुमिरत नामु सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती।।**
**फिरत सनेहँ मगन सुख अपनें। नाम प्रसाद सोच नहिं सपनें।।**

सेवक प्रेमपूरित हृदय से नाम का सुमिरन करता है-'**सेवक सुमिरत नामु सप्रीती...**', और बगैर श्रम के ही प्रबल मोह के दल को जीत लेता है।

'**फिरत सनेह मगन सुख अपने**'–प्रभु के स्नेह में मगन अपने ही सुख में निमग्न होकर घूमता है। '**नाम प्रसाद सोच नहिं सपनें।**'- नाम की कृपा से सपने में भी सोच नहीं करता। सेवक को सदा ही मन-क्रम-वचन से साफ होना चाहिए। जो भीतर हो, जबान पर हो। भीतर खराबी है तो वह ही कह डालो, छुपाओ मत। क्योंकि हम खराब नहीं होना चाहते, हमारे पास

खराबी थी भी नहीं.... कहीं संस्कार में पड़ी चली आ रही है तो बता देना चाहिए।

भरत जब राम जी से मिलने गए श्रृंगवेरपुर में, पता चला कि वे नंगे पाँव गए, खड़ाऊँ भी दे दिया तो,

**रामु पयादेहि पायँ सिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए।।**
**सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा।।**

**'सिर भर जाऊँ...'**–सिर के बल कोई चल सकता है क्या? हाथों के बल तो लड़के चलते ही हैं। कदाचित् सिर जमीन से छू गया तो वहीं जाम हो जाएगा, एक इंच आगे नहीं बढ़ पाएगा। भला सिर के बल कैसे जाओगे? सिर माने मस्तिष्क। मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार – यह मस्तिष्क का कार्य है। इस अंतःकरण को, मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार को समर्पित कर दो, उनके हाथ का यंत्र बना दो। अपनी बुद्धि लगाना बंद कर दो। वो जो अकल देते हैं उसको ले लो। ये है सिर भर जाना। तो,

**सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा।।**

ऐसा उचित है, सबसे सेवक का धर्म कठोर होता है। और भरत उसी भाव से समर्पण के साथ आगे बढ़ रहे थे। और जितने भी पुराने सेवक थे वे यह समझ पाए कि हमारी सेवकाई को धिक्कार है, भरत जी श्रेष्ठ हैं।

**देखि भरत गति सुनि मृदु बानी। सब सेवक गन गरहिं गलानी।।**

जो पुराने सेवक थे वो ग्लानि से गलने लगे– हमारे में बहुत कमी है, भैया भरत के विचार और आगे हैं। देवता घबड़ा गए कि भरत का इतना प्रेम होगा तो राम जरूर लौट आएंगे तो सरस्वती को बुलाया, कहा– षड्यंत्र करो। तो वह भाग गई, बोली– मैं यह नहीं कर सकती।

**सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देबि देव सरनागत पाही।।**
**फेरि भरत मति करि निज माया। पालु बिबुध कुल करि छल छाया।।**
**बिबुध बिनय सुनि देबि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी।।**
**मो सन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू।।**

भरत के हृदय में सीता और राम का निवास है।

**भरत हृदयँ सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू।।**

जहाँ सूर्य पूर्ण कलाओं से विकसित हो वहाँ भी कहीं अंधकार फैलाया जा सकता है क्या? तुम्हारे एक हजार आँखें हैं सुरेश, फिर भी तुम्हें यह सूर्य नहीं दिखाई देता। प्रणाम किया भरत जी को, चली गईं। लेकिन देवता सदा के स्वार्थी थे। उनको जो कुछ आता था उटाँग-पटाँग, षड्यंत्र रचने लगे। तब गुरु वृहस्पति ने उनको समझाया कि,

**मायापति सेवक सन माया। करइ त उलटि परइ सुरराया।।**

मायापति हैं भगवान और उनका सेवक है भरत। इसके साथ तुम जाल बिछाओगे तो कहीं उलट के तुम्हारे ही ऊपर न गिर पड़े।

**सुनु सुरेस उपदेसु हमारा। रामहि सेवक परम पिआरा।।**

हे सुरेश! हमारा उपदेश सुन! राम को सेवक परम प्यारा होता है। भगवान सुख मानते हैं जब उनके सेवक की तुम सेवा करो।

**मानत सुखु सेवक सेवकाईं। सेवक बैर बैरु अधिकाईं।।**

और प्रभु के सेवक से बैर करोगे, भगवान उससे सौ गुना ज्यादा बैर बाँध लेते हैं। तुम्हारा ठिकाना नहीं लगेगा। और फिर यदि सेवक की कोई रुचि है तो भगवान उसको अवश्य रखते हैं।

**राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी।।**

भगवान तो सेवक की रुचि में बँधे हुए हैं। सुरेश! तुम भरत की स्तुति करो, सेवा करो। फिर भी कुछ कुटिलता कर ही दिया। लेकिन भरत को, वशिष्ठ को, विश्वामित्र को, जनक को पता ही नहीं चला कि यहाँ माया भी फैली है क्योंकि हरि भक्तन के पास ना आवे, भूत प्रेत पाखंड।... जादू-टोना-मंत्र-तंत्र-यंत्र कुछ भी नहीं लगता।

दो चेला आ गए गुरुजी के पास। जब भ्रमण में गए तो वृद्ध गुरुजी बोले– भोजन बनाओ। वे बोले– गुरु महाराज! भोजन तो हम लोगों ने कभी

नहीं बनाया। तब गुरु महाराज ने ही किसी तरीके से बनाया। तब गुरुजी ने एक चेले से कहा– जाओ, तुलसी के पत्ते ले आओ भोग लगाने के लिए। वह टालमटाल करने लगा, इधर-उधर देखने लगा तब दूसरे चेले ने सोचा कि यह तो टालमटाल कर रहा है और गुरु जी अब हम ही को कहेंगे कि जाओ, पत्ता ले आओ। क्यों नहीं पहले से ही प्रबन्ध कर लूँ। वह बड़ी जोर से बिगड़ा– क्या दाहिने-बाएं देख रहा है, इतना बड़ा हो गया तुलसी का पत्ता नहीं जानता? अरे, केले की तरह बड़े-बड़े पत्ते होते हैं। जा, ला दौड़कर! तब गुरु बाबा बोले– मैं ही ले आता हूँ। गुरु बाबा स्वयं तुलसी ले आये, भोग लगाया, फिर बोले– भोजन करोगे? चेले बोले- गुरु महाराज की आज्ञा का कहीं उल्लंघन किया जाता है।

**राम नाम के आलसी भोजन के होशियार।**
**तुलसी ऐसे नरन को कोटि बार धिक्कार॥**

तो सेवा के कुछ नियम हैं।

## * गुरु अमरदास –

गुरु नानक जी की गद्दी पर बैठे थे अंगददास। उनके शिष्य हुए अमरदास। वो इतने भगत थे कि घर में रहते हुए ही तीस बार पंजाब से पैदल, नंगे पांव हरिद्वार आए, गंगा-स्नान किया और वैसे ही नंगे पांव वापस गए। तीस बार आए और गए। यह नियम चल रहा था।

एक बार वापस घर लौटे तो उन्हीं की पुत्रवधू भजन गा रही थी। एक भजन उसका कान में पड़ गया तो बोले– बेटा, यह भजन कहाँ पाया? वह बोली– गुरु अंगददास जी के हैं। वे बोले– ये अंगददास गुरु कहाँ रहते हैं? तो उसने बताया। वो उनके रिश्ते में भी थे, लेकिन इस भगत को पता ही नहीं, कहाँ रिश्तेदारी है, कौन हमारा है, कौन पराया है। बोले– अच्छा, तो वहाँ रहते हैं.... चुपचाप चले गए।

बताया कुछ नहीं, झाड़ू लगाना शुरू कर दिया। आश्रम में जाकर सेवा करने लगे तो पहले से जो सेवक लगे थे, उनको राहत मिल जाती है। वह

सोचते हैं– यह नया सेवक रुक जाता तो अच्छा रहता। किसी ने उसे टोका ही नहीं। धीरे-धीरे पुराने सेवक शिथिल होने लगे, अपनी सेवा से वे मुख मोड़ने लगे और अमरदास उन सबकी सेवा पकड़ने लगे। आहिस्ते-आहिस्ते सुबह चार बजे अमृतसर से पानी लाना और गुरु महाराज को नहलाना, धुलाना, बैठाना, वस्त्र बदलवाना.... सब काम शुरू कर दिये।

एक बार दस-पन्द्रह दिन से भयंकर बरसात हो रही थी। कभी-कभी झड़ियार लग जाता था पुराने जमाने में तो रास्तों पर काई जम जाती थी। जहाँ पाव रखो, फिसलने लगता। तो बरसते हुए पानी में अमरदास गया। नियम का वह पक्का था। चार बजे घड़ा भर पानी लेकर चला, पाँव फिसला और गिर गए। गिर जरूर गए लेकिन घड़े को नहीं गिरने दिया, बचा लिया।

बगल में एक तेली और उसकी पत्नी रहती थी। आवाज सुनकर पत्नी ने कहा– अरे, इतनी रात को कौन बेचारा गिर गया? तो तेली बोला– जिसका धनी धूरी कोई नहीं, जिसका मालिक मुख्तियार कोई नहीं, वही अनाथ अमरुआ होगा बेचारा।

गुरु महाराज ने यह वाक्य सुन लिया। सुबह जब स्नान करके गद्दी पर बैठे, दरबार लग गया तब बोले– बुलाओ उस तेली दम्पति को। दोनों आए। गुरु महाराज बोले– यह बताओ, रात में तुमने क्या कहा था? तब घबराए दोनों। उन्होंने सोचा– अरे, गुरु जी ने तो सुन लिया। वे बोले– गुरु महाराज, जो सजा मिलनी हो मिले। फिसलकर गिरने की आवाज आई तो मुँह से निकला– अरे! इतनी रात को कौन गिरा होगा, कौन निकला होगा बाहर? तो हमारे मुँह से निकला... वही होगा अमरुआ बेचारा जिसका मालिक मुखत्यार धनी-धोरी कोई नहीं।

तब गुरु महाराज ने अमरदास को बुलाया, बोले– जो गुरु की सेवा करता है, वह अनाथ नहीं है। संसार में वही एक सनाथ है। वह दास नहीं, वह स्वामी है। चद्दर ओढ़ाया और गद्दी में बैठा दिया, बोले– आज से सिख गद्दी के गुरु हुए। गुरु अमरदास ने भी गद्दी को बड़ी बढ़िया चलाया।

इस प्रकार साधु वही होता है दुनिया में जो सेवा को जीत ले। किसकी सेवा?

**जो सेवा सतगुरु पावे.....**
**बलिहारी उस सत्यगुरु की, जो वह गुफा लखावे।**

जो कुछ है, साधना करने की चीज है। तो सबको करनी चाहिए सत्गुरु की सेवा, संतों की सेवा और भगवान की सेवा। सभी ने शुरुआत में महापुरुषों की सेवा की है। सेवा जब जागृत हो जाय तो अहर्निश भगवान का सुमिरन, नाम का जप करना और ध्यान करना चाहिए।

**सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।**
**भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि॥**

- - - - - -

**सत्य कहउँ खग तोहिं सुचि सेवक मम प्रानप्रिय।**
**अस बिचारि भजु मोहिं परिहरि आस भरोस सब॥** (7/87 ख)

**सेवक सुमिरत नामु सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती॥**
**फिरत सनेहँ मगन सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहिं सपने॥**

सबको चलते-फिरते, खाना खाते, खुरपी चलाते... किसी भी परिस्थिति में, कोई भी काम करते हों, नाम याद आया करे, स्मृति-पटल पर सुमिरन चलता रहे। जीभ से भी उच्चारण करो। सुबह-शाम बैठकर समय जरूर दो। करो जाप और पाँच मिनट गुरु महाराज का धाम कैसा... आश्रम कैसा... महाराज कैसे...- थोड़ा याद कर लें मन ही से, शरीर से कहीं रहे तो श्रद्धा से जहाँ डोरी लगी तो गुरु में जो गुरुत्व है वह आपको मिलने लगेगा।

पहली है सेवा। अमरदास जी की तरह झूमकर करो। और जब साधना जागृत हो गई तो मन-क्रम-वचन से जो वासनाओं का सेवन करते थे, उधर से इंद्रियों का दमन करके, मन से सुरत लगाओ प्रभु के चरणों में, प्रभु के चिन्तन में।

**सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।**
**भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि॥**

विशुद्ध सेवक मुझे प्राणों की समान प्यारा होता है। तो कैसे सेवा करें? **'अस बिचारि भजु मोहिं'**- भजन सेवा है। यह मानस सेवा है। वो तन की सेवा थी, ये मन की सेवा है। मन से हम प्रभु का ही सेवन कर रहे हैं। सेवा का फल है अमृतमय पद की प्राप्ति।

**ब्रह्मवेत्ता वक्ता सुरति गुरु के लच्छन जान।**
**इच्छा राखे मोक्ष की ताहि शिष्य पहिचान॥**

उसके अंदर इच्छा होती है तो केवल मोक्ष की, कल्याण की; और कुछ नहीं। इसलिए सेवा सद्गुरु की ही करनी चाहिए। भगवान के एक नाम का जाप – उठते-बैठते, सोते-जागते हर समय याद आता रहे।

**॥ ओम् श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय॥**

# गुरुमन्त्र

मंत्र एक उलझा हुआ प्रश्न है। मंत्र के नाम पर लोग कान में कुछ शब्द कहते हैं और फिर कहा जाता है कि इसे किसी से बताना मत, यह अति गोपनीय है। मंत्र के नाम पर तरह-तरह के उच्चारण लोग करते हैं। तैतीस करोड़ देवता, तैंतीस करोड़ ही उनके नाम और हर नाम एक मंत्र है। और उतने ही तैंतीस करोड़ भूत और भूत झाड़ने का एक मंत्र। प्रत्येक प्रांत में, जिले में, प्रत्येक गाँव मे ओझाओं का मंत्र अलग-अलग प्रकार का होता है।

एक बार एक ओझा ने कहा– मैं बिच्छू उतार दूँगा। हम बोले– कैसे? वह बोला– मंत्र से। हमने कहा– क्या है मन्त्र? वह बोला–

*काला भैरव काली रात, भैरव रेंगे आधी रात।*
*अस्सी भट्टी का मद पीये और अस्सी बकरा खाए।*
*काली का पूत भैरव, जहाँ पठवा तहाँ जाए।*
*छूह्... बाचा गुरु दत्तात्रेय का बोल मंत्र सांचा....*

और एक झापड़ मारा। हम बोले– उतर गई बिच्छी? डंक जो दर्द कर रहा था? वह बोले– दो-एक दिन में खुदै उतर जाई। उसको विश्वास हो गया कि हमने मन्त्र से झाड़ दिया और रोगी को विश्वास हो गया कि बिच्छू झाड़ दिया गया, अब उतर जाई।

सिख लोग कहते हैं– वाहे गुरु जी दा खालसा, वाहे गुरु जी फतेह..., एक ओंकार सतगुरु प्रसाद। बौद्ध कहते हैं– 'बुद्धम् शरणम् गच्छामि, धम्मम् शरणम् गच्छामि, संघम् शरणम् गच्छामि।' जैनी कहते हैं– 'णमो अरि हंताणम, नमो सिद्धाणम, नमो आयरियाणं, णमो उवज्जायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं, एसो पंच नमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो। मंगलाणम च सव्वेसिं, पढमं हवई मंगलम्।।' शैव कहते हैं– 'ओम् नमः शिवाय।' वैष्णव बोलेंगे– विष्णवे नमः।

ओम् रां रामाय नमः। संन्यासी लोग ओम् लगाकर 5 देवताओं का मंत्र पढ़ते हैं- 1. देवी का, 2. गणेश का, 3. सूर्य का, 4. शंकर जी का, 5. विष्णु का। क्या मंत्र भी दो-चार, दस, बीस, पचास करोड़ हैं? क्या भगवान भी दो-चार हैं? गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं– भगवान एक हैं।

**ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँद रासी।।**
**अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी।।**

भगवान एक है। वह व्यापक है। सवा कभी हुआ ही नहीं। एक से दो कभी नहीं हुआ तो यह बहुत से मंत्र कहाँ से आ गए? हमें यह देखना है कि आपके शास्त्रों में मंत्रों का क्या स्वरूप है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने मंत्र के रूप में ओम् के जप का निर्देश दिया है– **'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मन्'** तथा **'मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्।'** (9/16)- मैं ही मंत्र हूं, मैं ही हवि हूँ।

**एकं शास्त्रं देवकीपुत्र गीतम,**
**एको देवो देवकीपुत्र एव।**
**एको मंत्रस्तस्य नामानि यानि**
**कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा।।** ( गीता माहात्म्य )

वास्तव में विशुद्ध मंत्र का आशय प्रभु के नाम से है जो योग-साधना अर्थात् भक्तिपथ का निर्वाह करता है। इसी के प्रभाव से ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ तथा परम तत्व परमात्मा भी सुलभ हो जाते हैं। यह है मंत्र।

संसार में मन्त्रों से कई आशय हैं, जैसे– परामर्श-सलाह देना। एक मंत्र कपटी मुनियों ने जपा है – साधु का वेश बनाकर, उल्टा-सीधा पढ़ाकर अपना उल्लू सीधा कर लेना। प्रायः राजा-महाराजाओं ने इसका आश्रय लिया है। एक मंत्र प्रभु का नाम है। इसका प्रयोग मांगलिक कार्यों में होता है, जैसे- भगवान राम का जब अभिषेक हुआ तो, **'बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे। नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे।।'** वेद मंत्र मुनि लोग पढ़ने लगे।

**बेदमंत्र मुनिबर उच्चरहीं। जय जय जय संकर सुर करहीं।।**

**वेद मंत्र–** जो अविदित है उसे विदित करानेवाली ऋचाओं का पाठ! मांगलिक कार्यों पर इसका उपयोग होता है जैसे– शादी-विवाह में, अभिषेक इत्यादि में।

भरत ने जब रामजी को मनाने का निर्णय किया तो अयोध्यावासी पीछे लग गए कि, **'जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू।।'**- जहाँ राम हैं वहीं सारा समाज रहेगा। बिना रघुवीर के अयोध्या में हमारा क्या काम!

**चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई। सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई।।**

ऐसा निश्चय करके, ऐसा मंत्र सुदृढ़ करके भरत के साथ पूरे अयोध्यावासी देव दुर्लभ निवास और सुख त्यागकर चल दिये।

एक मंत्र माने निर्णय लेना। सूर्पनखा जब भगवान राम के पास से नाक कटाकर आई तो बिगड़ी रावण के ऊपर कि,

**करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती।।**

\- - - - - - - -

**संग तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान तें लाजा।।**

तुम्हारे सिर पर शत्रु मंडरा रहा है, तुम्हें होश नहीं। देख, हमारे नाक की क्या दशा हो गई..... संगदोष से बड़े-बड़े यती नष्ट हो जाते हैं और कुमंत्र से राजा नष्ट हो जाता है।

यहाँ मंत्र माने सलाह, मशविरा। इसी से मंत्री पद बने हैं मंत्रालय बना है। सूर्पनखा गयी तो थी अपना ब्याह करने के लिए, लेकिन रावण को बताया– भैया, उनके साथ एक नारी है जो,

**रूप रासि बिधि नारि सँवारी। रति सत कोटि तासु बलिहारी।।**

सौ करोड़ रति देवी भी उसके ऊपर बलिहारी है। मैं तुम्हारे लिए लेने गई थी कि भैया के लिए यह उपहार ठीक रहेगा, पर लक्ष्मण ने मेरे नाक-कान काट दिए।

सूर्पनखा विधवा थी। जब उसका पति मारा गया तब बिलखती हुई रावण के पास आई, बोली– तू भाई है कि शत्रु? मेरे पति को तुमने मार डाला, लोग मुझे विधवा कहेंगे।

रावण बोला– बहन! युद्ध के नशे में मैं पहचान नहीं पाया। हमारी जात भी कहीं विधवा-सधवा होती है क्या? हम हजारों स्त्रियाँ रखते हैं, तुम हजारों पुरुष रखो। जाओ, भाई खर-दूषण के साथ मनचाहा विहार करो।

वह मनचाहा विहार करते हुए पहुँच गई पंचवटी – खर-दूषन के पास। सूर्पनखा बहुत कुरूप थी। वेश बदलने में बड़ी माहिर थी। साज-सज्जा की विशेषज्ञ थी।

**सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी।।**

वह बड़ी दुर्दांत निशाचरी थी। **'दारुन जस अहिनी'**–वह सर्पिणी के समान थी। सर्पिणी जिसको काट दे वह मौत देगी, यही उसका यश है। **'सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु।'**–अमृत की सराहना अमर करने में और विष की सराहना मार डालने में है। यह मार डालनेवाला यश उसके पास था। वह थी तो बड़ी दारुन।

**पंचबटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा।।**
**रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई।।**
**तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँयोग बिधि रचा बिचारी।।**
**तातें अब लगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु तम्हहि निहारी।।**

मेरे अनुरूप रूप-सौंदर्य का पुरुष विधाता ने गढ़ा ही नहीं। आप भी बहुत सुंदर हैं, ऐसी बात नहीं है, लेकिन अब जन्म हुआ है तो जीना तो पड़ेगा ही। आओ, ब्याह कर लें।

राम बोले– भाई, हमारा ब्याह हो चुका है, यह है सीता। वह है राजकुमार लक्ष्मण। उधर गई तो लक्ष्मण बोले– अरे, तुम रावण की बहन, एक राजकन्या हो। महारानी बनते-बनते दासी क्यों बनना चाहती हो? मैं इन भैया-भौजी का

सेवक हूँ। तुम भी मर जाओगी रात-दिन इनकी सेवा करते-करते। वह बोली– नहीं, मैं दासी नहीं हो सकती। लक्ष्मण बोले– तब भैया के पास जाकर प्रार्थना करो।

रामजी के पास आकर सूर्पनखा ने सोचा कि रोड़ा है यह सीता। उसने हमला कर दिया सीता पर। भगवान राम ने कहा– लक्ष्मण! यह है कौन? जरा इसके रूप-सौंदर्य का पता तो लगाओ।

नाक पर थोड़ा-सा झटका लगा तलवार का तो नाक कट गई तब कपट रूप तो भूल गई, असली रूप में आ गई।

**नाक कान बिनु भइ बिकरारा। जनु स्त्रव सैल गेरु कै धारा।।**

विकराल राक्षसी। रुधिर की धारा बहने लगी। असली वेशभूषा में आ गई।

इस प्रकार सूर्पनखा गई थी अपना ब्याह करने, रावण को मंत्र दे दिया, बोली– भैया, आपके लिए मैं स्त्री ढूँढ़ने गई थी। छल-छद्म-कपट कैसे भी अपना गोटी बैठा लेना, यह भी एक मंत्र है।

*** सुबेल पर्वत पर–**

**दुहुँ कर कमल सुधारत बाना। कह लंकेश मंत्र लगि काना।।**

लोगों का विश्वास है गुरुजी ही मंत्र देते हैं लेकिन यहाँ विभीषण भगवान राम के कान में मन्त्र दे रहा है तो क्या विभीषण हो गया गुरु?

लंका में सुमेरु पर्वत पर जब राम की छावनी लग गई तो विभीषण कानों से लग के भगवान राम को मंत्र दे रहा था। वह यह बता रहा था– भगवन्! यह जो काली घटा छाई है, यह मेघमाला नहीं है। और जो यह बिजली चमक रही है, यह बिजली भी नहीं है।

**लंका सिखर उपर आगारा। तहँ दसकंधर देख अखारा।।**
**छत्र मेघडंबर सिर धारी। सोई जनु जलद घटा अति कारी।।**

रावण अखाड़ा देख रहा है। मेघडंबर छत्र तना है, वह काली घटा है।

**मंदोदरी श्रवन ताटंका। सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका।।**

मंदोदरी के कर्णफूल हिल रहे हैं, वही दामिनी (बिजली) की कौंध है।

**बाजहिं ताल मृदंग अनूपा। सोई रव मधुर सुनहु सुरभूपा।।**

मधुर ताल-मृदंग जो बज रहे हैं, वही बादलों की गर्जना के समान हैं।

मंत्र माने सलाह। भला विभीषण राम जी को कौन-सा मंत्र देता? यहाँ मंत्र माने परामर्श।

**इहाँ बिभीषण मंत्र बिचारा। सुनहु नाथ बल अतुल उदारा।।**

विभीषण ने फिर एक मंत्र तैयार कर लिया। आप अतुल्य हैं, उदार हैं प्रभु।

**मेघनाद मख करइ अपावन। खल मायावी देव सतावन।।**
**जौं प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि। नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहि।।**

विभीषण ने कहा– मेघनाद अपावन यज्ञ कर रहा है, सिद्ध हो गया तो शीघ्र जीतने में नहीं आएगा। उचित सलाह-मशविरा करना मंत्र कहलाता है।

विभीषण जब भगवान श्रीराम जी के शरण में आया तब वह बहुत ही उलझन में था। मेरे जेष्ठ भ्राता ने सीता माता का हरण किया है, क्या भगवान राम मुझ पर विश्वास करेंगे? क्या प्रभु मुझे शरण में रखेंगे? बानरी सेना के सेनापतियों ने भगवान राम को मना किया कि इस दुष्ट को मत रखो। लेकिन भगवान श्रीराम ने कहा- नहीं,

**जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं।।**

विभीषण से गले मिले, समुद्र-तट से बालू उठाया और विभीषण का अभिषेक कर दिया, बोले- आओ लंकेश। विभीषण बोले– प्रभो, लंकेश तो रावण है! भगवान राम बोले– उसकी आयु पूरी हो गई विभीषण जी। अब इस भार को तो आप ही को वहन करना होगा। बराबर में बैठा लिया।

भगवान राम बोले- विभीषण जी, मेरी सेना इस समुद्र से कैसे पार हो,

आप कोई उपाय बतायें क्योंकि आपका आना-जाना इस पार उस पार लगा ही रहता है।

विभीषण बोले– प्रभो! समुद्र से प्रार्थना करनी चाहिए। आपका बाण समुद्र को सुखा सकता है लेकिन नीति कहती है, मर्यादा कहती है कि सागर से प्रार्थना करनी चाहिए।

भगवान राम समुद्र के किनारे कुश की चटाई बिछाकर प्रार्थना करने बैठ गए तो लक्ष्मण एकदम बौखला गये। **'मंत्र न यह लछिमन मन भावा।'** विभीषण ने जो मंत्र दिया था, वह लक्ष्मण को अच्छा नहीं लगा। **'राम बचन सुनि अति दुख पावा।।'** सोचा, आज ही तो आया है, आज ही महामंत्री.... मंत्रणा देने लगा।

**जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया।।**

**नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोषिय सिंधु करिअ मन रोसा।।**

यह उस रावण का भाई है जिसने माता सीता का अपहरण किया है। लक्ष्मण जी नाराज हो गये, बोले– प्रभो! देव का कौन भरोसा, समुद्र सुखाइए।

राम बोले– लक्ष्मण निश्चिन्त रहो, थोड़ा मुझे नीति का पालन कर लेने दो, फिर तुम जो कहते हो वही होगा।

**बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।**

**बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति।।**

तीन दिन तो नीति का पालन किया, फिर कहा– लक्ष्मण, जरा धनुष-बाण तो लाओ। फिर वही किया रामजी ने जो लक्ष्मण कह रहे थे। तो यहाँ मंत्र माने एक सलाह होता है।

* रावण के पास मंत्र की प्रक्रिया बहुत ऊँची थी।

**मंत्र आकर्षन कर दस भाला। अहिरावन चित डोल पताला।।**

आकर्षण मंत्र... खींचनेवाला मंत्र... बुलानेवाला मंत्र... यह मंत्र रावण के पास था। अहिरावण पाताल लोक में रहता था। आकर्षण मन्त्र जपा रावण

ने तो अहिरावण तुरन्त चला आया। पता नहीं किस वाहन से आया? तो यह है आकर्षण मंत्र।

**प्रेरित मंत्र–** चित्रकूट में भगवान श्रीराम ने जयंत के पीछे जब बाण छोड़ा तो **'प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि बायस भय पावा।।'** वह मार नहीं रहा था, केवल पीछा कर रहा था। बैल जब कम चलते हैं हल में तो पीछे से थोड़ा खोद देते हैं, उसी तरह भगवान राम के बाण ने उसको बैठने नहीं दिया कहीं पर।

**धरि निज रूप गयउ पितु पाहीं। राम बिमुख राखा तेहि नाहीं।।**
**ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित ब्याकुल भय सोका।।**
**काहूँ बैठन कहा न ओही। राखि को सकइ राम कर द्रोही।।**

सब जगह भ्रमित, व्याकुल। भय और शोक में विकल होकर पिता के पास भी गया लेकिन उन्होंने उसे अपने पास नहीं रखा।

**नारद देखा बिकल जयंता। लागि दया कोमल चित संता।।**
**पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही।।**

तब देवर्षि नारद जी ने कहा– राम जी की शरण में जाओ। वह घूम करके भगवान के चरणों में गिर गया और उसका उद्धार हो गया। यह था प्रेरित मंत्र।

मंत्र का तात्पर्य एक तो है राजनीति की गठन पर मंत्रालय, मंत्रिमंडल और उचित सलाह मशविरा का नाम मंत्र है किंतु जो शास्त्रों में है, जिस मंत्र को लेने के लिए हम तरस रहे हैं, जिस मंत्र के जाप करने से भगवान भी वश में हो जाते हैं, वह मंत्र केवल प्रभु का नाम है। तो,

**ब्रह्म राम तें नामु बड़, बर दायक बर दानि।**
**रामचरित सत कोटि महँ, लिय महेस जियँ जानि।।**

परब्रह्म परमात्मा, राम - इनसे भी नाम बड़ा है। नाम वरदाता है। तुम नहीं मांगोगे तब भी नाम जपोगे तो फल दे देगा। वह वरदानी है- **'बर दायक बर दानि'**।

**'रामचरित सत कोटि महँ'**-सौ करोड़ राम-चरित्रों में से शंकर जी ने छांटकर इस राम नाम को अलग किया है। तो,

**नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सतकोटि अपारा।।**

सौ करोड़ रामचरितमानस है, उतनी ही विधियों से राम का अवतार है। भगवान शिव ने सौ करोड़ नामों में से छांट के इस राम नाम को अलग किया इसलिए,

**बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को।।**

मैं उस राम नाम की वंदना करता हूँ जो अग्नि, सूर्य और चंद्रमा में जो प्रकाश है, उसी की उपज है, उसी से प्रकाशित है। यह महान मंत्र है।

**महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू।।**

महामंत्र, जिसका शंकर जी जप करते हैं, काशी में मरने वालों की मुक्ति का हेतु भी यह राम नाम ही है। राम नाम मंत्र ही नहीं, महामंत्र है। राम और ब्रह्म से भी बड़ा है। नाम ब्रह्म और राम को प्रकट करने की क्षमता रखता है इसलिए नाम बड़ा है। इससे बड़ा मंत्र कोई नहीं। इसको शिव जपते हैं। काशी में मरने वाले जीवों को भगवान शिव राम नाम मंत्र के प्रभाव से मुक्त कर देते हैं इसलिए,

**मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के।।**

महान मणि है यह मंत्र। **'बिषय ब्याल के'**- विषरूपी विषधर के असाध्य कुअंक, विषयों के कुसंस्कार – जो अनंत योनियों के कारण हैं, दुःख के कारण हैं – इनको भी यह मिटा देता है। भाग्य में कुअंक, विषयरूपी विष के जो कुसंस्कार पड़े हैं, उसे भी यह काट देता है, विषमुक्त कर देता है। जो जीव मौत की ओर जा रहा था, उसे यह नाम जीवन प्रदान कर देता है इसलिए महान मणि है।

मंत्र एक परम तत्व परमात्मा के एक नाम का जाप है।

**मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा।।**

यह मंत्रों का भी राजा है, मंत्रराज है। राजयोग... जो निश्चित मुक्ति दे दे, फिर कुछ भी भोगने की इच्छा न रहे। राजरोग... सारे विश्व के डॉक्टर सिर पर खड़े हो जाएं तब भी न बचा सकें; निश्चित मौत। यह राजमंत्र है, निश्चित प्रभु का दर्शन करा के दम लेगा, तो मंत्रराज- जो मंत्रों का राजा है। तो, **'मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा'** लेकिन पूरे संयम के साथ, **'पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा।'**–पूरे परिवार के साथ जो आपका पूजन करते हैं।

मंत्र जाप करने के लिए यम-नियम चाहिए। संयम के साथ अनुष्ठान करें तो, **'मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा।।'**- मेरे नाम का जाप – यही वेदों ने प्रकाशित किया है।

## * लोमस जी कागभुसुण्ड से–

**मम परितोष बिबिध बिधि कीन्हा। हरषित राम मंत्र तब दीन्हा।।**

**बालक रूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना।।**

**मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। रामचरित मानस तब भाषा।।**

लोमस के यहाँ पहुँच गए कागभुसुंडि। वह पहले टाल देना चाहते थे। कागभुसुंडि ने जब बहुत हठ किया, तो बोले– कौवे की तरह काँव-काँव लगा रखा है, जाओ, चांडाल पक्षी कौवा हो जाओ।

श्राप को हमने शीश चढ़ाया। मुझे न भय लगा, न दीनता आई, न हर्ष ही हुआ।

**लीन्ह श्राप मैं सीस चढ़ाई। नहिं कछु भय न दीनता आई।।**

**तुरत भयउँ मैं काग तब पुनि मुनि पद सिरु नाइ।**
**सुमिरि राम रघुबंस मनि हरषित चलेउँ उड़ाइ।।**

मैं हर्ष के साथ उड़ चला। तब मुनि चिन्ता में पड़ गए–

**रिषि मम महत सीलता देखी। राम चरन बिस्वास बिसेषी।।**
**अति बिसमय पुनि मुनि पछिताई। सादर मुनि मोहि लीन्ह बोलाई।।**

वे पछताने लगे, सादर बुला लिया और फिर बहुत सांत्वना दिया। फिर वही राम मंत्र दे दिया। हर हालत में प्रभु का एक नाम – ये राजमंत्र है। ब्रह्म और राम से भी बड़ा है यह महामंत्र। लेकिन जपने की एक विधि है।

*** महाराजा मनु–**

**द्वादश अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग।**
**बासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग॥**

द्वादश अक्षर.... लोग कहते हैं–'ओम् नमो भगवते वासुदेवाय' में बारह अक्षर हैं। ओ..म..भ..ग..व..ते... ऐसे गणित लगाते हैं। ऐसा कुछ नहीं है। पाँच कर्मेंद्रियाँ, पाँच ज्ञानेंद्रियाँ और मन और बुद्धि। अब चित्त और चित्त की वृत्ति। चित्त और चित्त का प्रवाह... चित्त का वेग। इसका नाम है मन, बुद्धि, चित्त और चित्ती। फिर कालांतर में लोगों ने इसको चार भागों में बाँट लिया– मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार – चतुष्टय अंतःकरण। लेकिन उपनिषद के ऋषियों ने दो ही भागों में रखा – मन और मन की प्रवृत्ति।

तो द्वादश... यह अक्षय हो जाए, संयत हो जाए, यह संयम सध जाए। इनको नियमित, संयमित करके द्वादश अक्षर मंत्र जपो। **'द्वादश अक्षर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग।'** इस संयम को साधते हुए मंत्र को जपो।

बड़े अनुराग सहित जप रहे थे मनु और माता शतरूपा। **'बासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग।'** जो श्वास में वास करता है, उस परम देव परमात्मा के चरणों में मन लग गया तो यह छत्तीस करोड़ देवता भजने की जरूरत नहीं है। हमें हनुमान जी को खुश करना तो हनुमान जी, हनुमान जी। देवी को खुश करना है तो देव्यै देव्यै...., ओम गणपतये नमः...– ऐसा कुछ नहीं है। सृष्टि के सारे के सारे देवता एक साथ खुश हो जाएंगे इस मंत्र से। मंत्र बहुत छोटा है और उसके वश में ब्रह्मा, विष्णु, महेश सब हैं।

**मंत्र परम लघु जासु बस, बिधि हरि हर सुर सर्ब।**
**महामत्त गजराज कहुँ बस कर अंकुस खर्ब॥**

ब्रह्मा-विष्णु-महेश और सारे देवता....तैंतीसों करोड़ देवी-देवता सब उसके वश में हो जाते हैं जब इंद्रिय-संयम के साथ आप मंत्र का जाप करो। जब संयम के साथ आगे बढ़ोगे, संयम सधा और मंत्र जहाँ जपोगे तहाँ फिर देखने में मंत्र छोटा, पर उसके वश में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सारे तैंतीस करोड़ देवता, परब्रह्म परमात्मा – सब वश में हो जाएंगे।

परमात्मा के भजन की तीन श्रेणी है। पहले तो जीव अचेत है। **'मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा।।'**–वह मोहरूपी रात्रि में निश्चेष्ट पड़ा है। रात-दिन दौड़-धूप करता है, मात्र स्वप्न देखता है। लेकिन जब यह जाग जाय,

**एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी।।**

इस जगतरूपी रात्रि में योगी जाग जाता है। परम + अर्थ = जो शाश्वत धर्म का प्रत्याशी है, और विधाता के प्रपंच के वियोगी हो जाते हैं।

भगवान कृष्ण कहते हैं– अर्जुन! **'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।'**- इस जगतरूपी रात्रि में सभी प्राणी अचेत पड़े हैं, संयमी पुरुष जाग जाता है, जब भजन जागृत हुआ।

भजन वैसे तो जागृत होता नहीं। मंत्र लिखने में नहीं आता, वाणी से भी नहीं। जाप तो ओम्, राम का ही करना पड़ेगा। लेकिन यह एक अवस्था ऐसी आती है जहाँ नाम मंत्र की संज्ञा पा जाता है। जिस विधि से भगवान आत्मा से अभिन्न होकर खड़े हो जाएं, मार्गदर्शन करने लगें, हमें भजन की विधि पढ़ावें, दृढ़ावें – परमात्मा की उस प्रशक्ति की सुनवाई प्रथम चरण है कि प्रभु आत्मा से अभिन्न होकर खड़े हो जाए, विधि संचार करने लगे। विधि प्रसारण कि जब क्षमता आ गई तो ब्रह्मा। यह है संरचना। सृष्टि अनादि है, अस्त-व्यस्त, अचेत है। अब वह जागृत हो गयी और विधि के अनुसार जब साधना थोड़ी उन्नत हुई तो योगक्षेम करने लगते हैं, रक्षा करने लगते हैं।

तो, परमात्मा की वह प्रशक्ति जो परवरिश करती है, भरण-पोषण करती है उस प्रशक्ति का नाम है विष्णु। विश्व अणु से विष्णु। विश्व के जिस किसी

अणु पर आप खड़े हों, उस अणु से ही जागृत होकर आपका योगक्षेम, परवरिश, भरण, पालन-पोषण, सुरक्षा प्रदान करने लगते हैं तो यह परवरिश करने वाली प्रशक्ति का नाम है विष्णु।

और फिर उन्हीं के वरदहस्त के नीचे साधना और उन्नत हुई, मूल का स्पर्श किया तो संहार करने वाली प्रशक्ति का नाम है शिव। प्रकृति की सीमाओं से अतीत इसलिए शिव। इस क्षण संहार हुआ। एक भी संस्कार बाकी है तो जैसा संस्कार है, जन्म लेना पड़ेगा। जब संस्कार है ही नहीं तो पुनर्जन्म कौन देगा? तो अंतिम संस्कार का मिटना – यह और तुम्हारे जन्म-मृत्यु के कारण का सदा के लिए मिट जाना एक साथ घटित होता है। तो उन्हीं परमात्मा की वह प्रशक्ति जो संहार करती है उसका नाम है शिव। लेकिन शिव शब्द के दो प्रयोग हैं। एक तो परमात्मा की वह प्रशक्ति जो संहार करती है। दूसरा संहार का क्षण पूरा होते-होते जो स्थिति शेष बचती है, वह है परमात्म तत्व, कल्याण तत्व, परम तत्व, पुरुषोत्तम, अविनाशी तत्व, शिवतत्व (जो प्रकृति की सीमाओं से अतीत वो शिव तत्व।) संहार के साथ प्रकट होने वाली वस्तु। तो शिव के उभय प्रयोग हैं। एक तो परमात्मा की वह शक्ति जो संहार करती है, दूसरी वह जो संहार के साथ जो अवशेष छूटता है। प्रकृति के जन्म-मृत्यु का कारण खत्म हुआ तो अवशेष बचा परमात्मा, व्याप्त ब्रह्म का दर्शन और स्थिति। वह है शिवतत्व, कल्याण तत्व।

शंकर जी के शरीर में श्मशान की विभूति रहती है। जब एक भी संस्कार बाकी नहीं तो हृदय हो गया श्मशान। जीवाणु है ही नहीं। उस वक्त ईश्वरीय विभूति शेष बचती है इसलिए शंकर श्मशान की विभूति अपने तन में रमाए रहते हैं।

अवढरदानी अर्थात् अति शीघ्र द्रवित होनेवाले, असीम दानदाता। भूतनाथ... भूत माने जीवित प्राणी। प्राणी मात्र की शरणस्थली है तो वह महापुरुष। और जो इस शिव तत्व में स्थित हैं वही होते हैं सदगुरु। इसलिए शंकर आदि सतगुरु हैं। **'नास्ति तत्वम् गुरोर्परम्'**- जिसका कभी विनाश

नहीं होता, परम गुरु है। जिसने उस गुरुत्व को प्राप्त कर लिया हो वह सद्गुरु। शिव, सद्गुरु, पुरुषोत्तम, परमात्मा – यह पर्यायवाची शब्द हैं। इसलिए गुरु एक स्थिति है; यह नहीं कि हम भी गुरु, आप भी गुरु। तो गुरु महाराज के चरणों में जहाँ श्रद्धा से डोरी लग गई, एक नाम का जाप जहाँ किया तो कुछ ही समय बाद वह विधि जागृत हो जाएगी। भगवान पढ़ाने लगेंगे, भगवान योगक्षेम करने लगेंगे, आपके जन्म-मृत्यु के कारण का संहार कर देंगे और अंतिम कारण जहाँ खत्म हुआ, उसके पूर्ण होते-होते जो अवशेष बचा वह शिवतत्व, कल्याणतत्व, आत्मतत्व है, वही सद्गुरु हैं, वही सद्गुरु का स्वरूप होता है।

सत्य से संयुक्त हों, दूसरों में सत्य प्रसारित करने की क्षमता हो, उन्हें सद्गुरु कहते हैं। गुरु एक स्थिति है। भगवान कृष्ण भी गुरुर्गरीयान्- गुरुओं के भी परम गुरु है, परम पूजनीय हैं।

तो भगवान का नाम ही मंत्र है। यह साधारण नाम जब प्रभु की प्रेरणा से उनके वरदहस्त के नीचे आ जाता है, उस दिन से यह मंत्र कहलाता है। नाम तो लाखों लोग लिखकर गंगा में बहा देते हैं, फाइल की फाइल तैयार कर लेते हैं, लेकिन वह मंत्र नहीं है। इसलिए एक परमात्मा में श्रद्धा स्थिर करके एक नाम का जाप करो।

मंत्र एक जागृति है। यह वाणी से कहने में नहीं आता। यह अनिर्वचनीय है। यह वाणी का विषय ही नहीं है। यह एक जागृति है। जहाँ स्वरूप पकड़ा तो सद्गुरु जो वाणी से कहते हैं, वह हृदय से कहने लगेंगे। वाणी से महापुरुष तभी तक बोलते हैं जब तक हृदय से बोलना शुरू नहीं करते हैं। इसका नाम है भजन की जागृति।

**भगति तात अनुपम सुख मूला। मिलहिं जो संत होहिं अनुकूला।।**

वह मिलेगी तभी जब संत अनुकूल हों। यह जागृति कि आत्मा ही जागृत हो जाए, प्रभु जागृत हो जाएं, मार्गदर्शन करने लगे – यह जागृति किसी सद्गुरु के द्वारा ही संभव है। इसलिए,

**गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई॥**

## * सद्गुरु अनिवार्य हैं।

**ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥**

दान करो, दया करो, इंद्रियों का दमन, मन का शमन, जहाँ तक सत्पुरुषों ने कहा है, यह धर्म है। तीर्थाटन धर्म है। दान, दया, सारे संयम, सारे व्रत-उपवास धर्म हैं, लेकिन यह धर्म हमें पहुँचाएंगे भक्ति के पास।

**सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहुँ पाई॥**

सब का फल हरि की भक्ति है किंतु **'सो बिनु संत न काहुँ पाई।'**– बगैर संत के आज तक किसी ने प्राप्त किया ही नहीं।

लक्ष्मण! अनुपम सुख की मूल भक्ति है। तो लक्ष्मण बोले– भगवन्, प्रदान कर दें। राम बोले- सीधा तो मैं भी नहीं दे सकता। **'मिलइ जो संत होइँ अनुकूला।'**-जिनके संशयों का अंत हो चुका हो, वह संत हैं। वहीं से प्राप्त होगा इसलिए प्रारम्भ नाम और रूप से करें–

**नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी॥**

नाम और प्रभु का स्वरूप दोनों की गति अकथनीय कथानक है। समझने में सुखदाई है, वर्णन नहीं किया जा सकता।

सब जानते हैं भगवान अनिर्वचनीय है, अमूर्त है, अरूप है लेकिन गोस्वामी जी का कहना है– नाम भी अमूर्त है, अरूप है, अचिंत्य है, अकथनीय कथानक है। यह भी एक जागृति है। तत्वदर्शी महापुरुष के शरण-सानिध्य में टूटी-फूटी सेवा, उनके निर्देशन के अनुसार साधना जहाँ पार लगी, उनका दो मिनट भी स्वरूप पकड़ में आ गया, श्रद्धा से संबंध जुड़ गया तो भजन जागृत हो जाएगा। फिर आत्मा से ही वह परम प्रभु परमात्मा अभिन्न होकर खड़े हो जाएंगे, पढ़ाने लगेंगे।

भगवान पढ़ाते हैं, सद्गुरु पढ़ाते हैं, आत्मा जागृत है, आत्मा पढ़ाती है - यह सब पर्यायवाची शब्द है। लेकिन ये जागृति सतगुरु से है।

एक ही नाम को चार श्रेणियों से जपा जाता है – बैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती, परा। खूब नाम जपो। राम-राम, ओम्-ओम्..... व्यक्त है तो बैखरी। हरि-कीर्तन करो, झूम के करो – सब सही है। फिर जब शांत-एकांत में बैठो तो बैठकर चिंतन से जपो। ये कंठ से उच्चारण करते हैं। हल्का जीभ का सहारा दो, उच्चारण अवश्य करो। सुनो भी, पर पड़ोसी कोई हो तो उसको न सुनाई पड़े। वह है मध्यमा।

तीसरा क्रम है पश्यन्ति वाणी का जप। शांत बैठकर देखो, स्वास कब अंदर गई, कब आई, कितनी रुकी, फिर कब लौटी – उसको पहचानो। दो-चार बार जब मन देखने लगे, मन जब भली प्रकार अपने कर्तव्य का निर्वाह करने लगे तो आहिस्ते से चिंतन में नाम डाल दो। सांस आई तो ओम्, गई तो ओम्। ऐसी खरी ड्यूटी दो कि एक भी श्वास हमारी जानकारी के बगैर व्यर्थ न जाने पाए। कुछ दिन तो ढालना पड़ता है चिंतन से, फिर ढला-ढलाया मिल जाएगा। श्वास सिवाय नाम के और कुछ कहती ही नहीं है। केवल देखा भर करो। हर महापुरुष ने आदेश दिया है कि श्वसन क्रिया पर सुरत को स्थिर करो। भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं–

**स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।**
**प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ॥**

**यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।**
**विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः॥**

अर्जुन! बाहर के विषयों, दृश्यों का चिन्तन न करते हुए, उन्हें त्यागकर, नेत्रों की दृष्टि को भृकुटी के बीच में स्थिर करके, **'भ्रुवोः अन्तरे'** का ऐसा अर्थ नहीं कि आँखों के बीच या भौंह के बीच कहीं देखने की भावना से दृष्टि लगाये। भृकुटी के बीच का शुद्ध अर्थ इतना ही है कि सीधे बैठने पर दृष्टि भृकुटी के ठीक मध्य से सीधे आगे पड़े। दाहिने-बायें, इधर-उधर चकपक न देखें। नाक की डाँड़ी पर सीधी दृष्टि रखते हुए (कहीं नाक ही न देखने लगें) नासिका के अन्दर विचरण करनेवाले प्राण और अपान वायु को सम करके

अर्थात् दृष्टि तो वहाँ स्थिर करें और सुरत को श्वास में लगा दें कि कब श्वास भीतर गयी? कितना रुकी? (लगभग आधा सेकण्ड रुकती है, प्रयास करके न रोकें।) कब श्वास बाहर निकली? कितनी देर तक बाहर रही? कहने की आवश्यकता नहीं कि श्वास में उठनेवाली नामध्वनि सुनायी पड़ती रहेगी।

इस प्रकार श्वास-प्रश्वास पर जब सुरत टिक जायेगी तो धीरे-धीरे श्वास अचल, स्थिर ठहर जायेगी, सम हो जायेगी। न भीतर से संकल्प उठेंगे और न बाह्य संकल्प अन्दर टकराव कर पायेंगे। बाहर के भोगों का चिन्तन तो बाहर ही त्याग दिया गया था, भीतर भी संकल्प नहीं जाग्रत होंगे। सुरत एकदम खड़ी हो जाती है तैलधारावत्। तेल की धारा पानी की तरह टप-टप नहीं गिरती, जब तक गिरेगी धारा ही गिरेगी। इसी प्रकार प्राण और अपान की गति एकदम सम, स्थिर करके इन्द्रियों, मन और बुद्धि को जिसने जीत लिया है; इच्छा, भय और क्रोध से रहित, मननशीलता की चरम सीमा पर पहुँचा हुआ मोक्षपरायण मुनि सदा 'मुक्त' ही है।

नासिका में विचरते हुए स्वास को देखो। स्वास सिवाय नाम के और कुछ कहती ही नहीं है। देखा भर करें तो जो मन भाग-दौड़ कर रहा था, अब वो अपना कर्तव्यपालन करने लगा तो संकल्प कौन करेगा! इसका नाम है अजपा। उस वक्त वायु से तेज चलने वाला मन सिमटकर नाम के अंतराल में स्थायित्व ले ले तो ये मंत्र की अधिकतम सीमा, पराकाष्ठा, परिपक्व अवस्था है परा।

मन अन्तर सः मन्त्र। जब नाम अंतर से, अपने अन्तराल में स्थान दे दे और यह मंत्र जब प्रभु पढ़ाने लगें कि अब स्वास ठीक लगी बेटा... अब गड़बड़ हो रहा, अब सावधान हो जा... अब लग - ये है मंत्र की जागृति, भजन की जागृति।

इस तरीके से यह जो जागृति हुई आपमें, गोपनीय है। वही जानता है जिसमें जागृत है। सूरत में, स्वास में टिक गई तो वही जानता है जिसकी टिकी है। **'कै जाने जीव आपना कैर जनावै पीव।'** तो मंत्र एक जागृति

है, वास्तव में गोपनीय है। **'नाम रूप गति अकथ कहानी।'**- कहने में आता ही नहीं।

गोपनीय है ही, जब वाणी से निकलना ही नहीं है। लोगों ने इससे बड़ा लाभ उठाया। कपटी मुनि ने प्रतापभानु को भरमा दिया– **'छठें श्रवन यह परत कहानी। नास तुम्हार सत्य मम बानी।।'** क्योंकि **'जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाउ। फलइ तबहिं जब करिअ दुराऊ।।'**–योगयुक्त मंत्र का प्रभाव तब फलीभूत होता है जब किसी को बताया ना जाए। कदाचित् बता देते तो सी.आई.डी. विभाग सक्रिय हो जाता, राजा के प्राण बच जाते, राज बच जाता। और नहीं बताया तो परिणाम निकला कि सर्वनाश हो गया।

'मंत्र गोपनीय है।' कपटी मुनियों ने इसका बड़ा लाभ उठाया। कालनेमि ने हनुमान जी को भरमा रखा था। हनुमान जी जब उधर से गुजरे तो कालनेमि रावण का अनुचर, पीछे से चला। हनुमान जब चल दिए तो पीछे से रावण ने बुलाकर उसको भेजा और वह हनुमान जी से पहले पहुँच गया–

**अस कहि चला रचिसि मग माया। सर मंदिर बर बाग बनाया।।**

सर, वाटिका तैयार। मंदिर तैयार। अपने बैठने की चौकी तैयार। वेश भी बना लिया – 'मैं तो राम ही राम पुकारू और नाम नहीं जानू... सीताराम सीताराम सीताराम....'

हनुमान भी आ गए झाँसे में, सोचा, कोई महापुरुष हैं, प्रणाम कर लें। जहाँ प्रणाम करने आये, कालनेमि बोला- आओ हनुमान।

हनुमान बोले– प्रभो! आप हमें पहचानते हैं?

कालनेमि बोला– अच्छी तरह पहचानता हूँ। मैं तपोबल से देख रहा हूँ, राम-रावण युद्ध हो रहा है, लक्ष्मण को शक्ति लगी है। एक वैद्य ने तुमको भेजा है। विजय रामजी की होगी। उस दुष्ट राक्षस की आयु पूरी हो गई है। हनुमान, तुम ऐसा करो, रात भर यही विश्राम करो। हनुमान बोले– अरे, मैं यहाँ विश्राम करूँगा तो रामदल में अंधेरा हो जाएगा।

कालनेमि बोला- अरे, तुम्हारे जैसे अंतरंग भगत में इतना अविश्वास कहाँ से आ गया हनुमान? जहाँ राम रहते हैं, सदा प्रकाश रहता है। वहाँ अंधेरा हो ही नहीं सकता। खैर कोई बात नहीं, तुम सर मज्जन करके आओ और हमसे गुरुमंत्र ले लो।

लगे हनुमान मंत्र लेने। तालाब में जहाँ पाँव रखा तो मगर ने पकड़ लिया। उठाकर पटका तो उसमें से दिव्य गंधर्वी प्रकट हुई, वह बोली- हनुमान जी! प्रभु को किसी संजीवनी की आवश्यकता नहीं थी। मेरे उद्धार के लिए आपको भेजा है। लेकिन सावधान हनुमान जी! ये रावण का अनुचर राक्षस है, मुनि नहीं है- **'मुनि न होइ यह निसिचर घोरा। मानहु सत्य बचन कपि मोरा।।'**-आपकी हत्या करने के लिए यह मौके की तलाश कर रहा है।

हनुमान जी ने कहा- तुम निश्चिन्त रहो। यह मेरी हत्या करने नहीं आया बल्कि खुद मरने आया है। जाते ही हनुमान जी ने कहा-

**कह कपि मुनि गुरदछिना लेहू। पाछे हमहिं मन्त्र तुम्ह देहू।।**

महाराज, गुरु दक्षिणा ले लो, फिर मंत्र देना।

वह बोला- नहीं बेटा, पहले तू मंत्र ले ले।

हनुमान बोले- नहीं नहीं, पहले दक्षिणा ले लो, फिर मन्त्र।

वह बोला- ला क्या देता है....

हनुमान बोले- जरा चरण इधर बढ़ाइये।

जहाँ चरण बढ़ाया, पाँव पकड़ कर पटक दिया हनुमान ने और आगे बढ़ गये। यदि यह मंत्र गोपनीय रहा होता तो हनुमान देर से निकलते उस भ्रमजाल से। इसलिए गोपनीय मंत्र की आड़ पकड़कर लोगों ने बहुत धोखा दिया है समाज को।

धृतराष्ट्र से उनके मंत्री चार्वाक ने आकर कहा- राजन्! आप पांडवों को मरवा डालो। आपके बच्चे पाण्डवों की अपेक्षा पीछे होते जा रहे हैं। पाण्डव तरक्की पर तरक्की किए जा रहे हैं।

धृतराष्ट्र बोला- कैसे मरवाएँ?

चार्वाक बोला- राजन्, आप संतों की भाषा बोलिए कि यह संसार झूठा है, नश्वर है, दो कौड़ी का है, यह जीवन निरर्थक जा रहा है, मैं तो तपस्या करूँगा। मुझे राजपाट से कोई प्रयोजन नहीं है।

तब धृतराष्ट्र ने 'प्रिय अनुजपुत्रों-प्रिय अनुजपुत्रों' की झड़ी लगा दी। लाक्षागृह बना डाला। वहाँ भगवान का वरदहस्त था, इसलिए पाण्डव सुरक्षित निकल गए। तो यह बहुत खतरनाक मंत्र हैं। इससे बहुत लोगों ने काम लिया।

भगवान बुद्ध जब घर से निकले ही थे, पहले दिन ही जब वनवास में कदम रखा, भगवा वस्त्र पहने एक संन्यासी दिखाई दिया। बुद्ध ने कहा– आप संन्यासी नहीं हो सकते। यह धनुष-बाण और यह आड़ में छुपाई हुई छुरी... तुम तो हमें वधिक लग रहे हो।

वह बोला– मैं वधिक ही हूँ।

बुद्ध बोले– यह भेष क्यों बनाया?

शिकारी बोला– इस भेष से मृग विश्वास करके जल्दी करीब आ जाते हैं तो मेरा काम जल्दी हो जाता है।

बुद्ध बोले– ओह, उनके विश्वास को भी तुमने धोखा दिया। कितना अत्याचार! संतों के वेश को भी तुमने बदनाम किया। लो, यह मेरे वस्त्र तुम ले लो, अपने वस्त्र हमें दे दो।

राजकीय पोशाक थी, उसने खुशी-खुशी उनको ले लिया। जब बदल लिया तो बुद्ध ने कहा– फलाने जगह दुकान में जाकर दिखाना, तुम्हें खूब धन मिल जाएगा जिससे तुम कोई दूसरा धंधा करना।

इसलिए हमें उसी नाम को जपना है जिसे जपने के लिए हमारे महापुरुषों ने कहा है। दो-ढाई अक्षर का एक परम प्रभु का नाम - ओम् या राम में से कोई एक। गुरु महाराज का कहना था कि भजन एक छुपी हुई वस्तु है। कितनौ बेटा राम-राम करो, सब ऊपर ही ऊपर है। कहीं कुछ नहीं। किसी तत्वदर्शी

महापुरुष के द्वारा यह जागृति हो जाया करता है। भजन एक जागृति है। ओम्, राम, शिव, किसी दो-ढाई अक्षर के नाम का जाप करो। कहीं भी चले जाओ, घर में रहो कहीं रहो, सुबह और शाम पाँच मिनट भी यदि गुरु का स्वरूप पकड़ लोगे तो जिसका नाम भजन है, वह घर से ही जागृत हो जायेगा।

सुबह-शाम ओम् अथवा राम किसी दो-ढाई अक्षर के एक नाम का जाप चलते-फिरते, खुरपी चलाते, खाना खाते, पानी पीते स्मृति-पटल पर आया करे, स्मरण बना रहे तो सोने में सुहागा है। सुबह-शाम बैठकर आधा घंटा-बीस मिनट समय अवश्य दो। नियम खंडित कभी भी नहीं होना चाहिए चाहे लाश पड़ी रहे तो जिसका नाम मंत्र है, मैं यहाँ बैठे-बैठे दे दूँगा, तुम घर बैठे-बैठे पा जाओगे।

**!! बोलिये गुरुदेव भगवान की जय !!**

# पिण्डदान

**॥ बोलिये श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय॥**

आज आपमें से किसी ने पूछा है कि पिण्डदान उचित है या अनुचित? आजकल पितृपक्ष चल रहा है। हमें यह देखना है कि पितृपक्ष क्या है? पूरे संसार में किसी न किसी रूप में लोग अपने पूर्वजों का स्मरण करते ही हैं। आज हम देखेंगे कि इसका औचित्य क्या है?

पिण्ड माने केवल भोजन होता है, उदक माने पानी होता है तो पिण्डोदक...। बुद्धकाल में मागधी भाषा जोरों पर थी। उन दिनों जो महात्मा भिक्षा करने जाते थे, वे बोलते थे- पिण्डपात करने जा रहे हैं। और कोई महात्माओं को भोजन करावे तो उसको पिण्डकश्रेष्ठी, पिण्डदान करनेवाला श्रेष्ठी, भोजन करानेवाला श्रेष्ठी, अनाथपिण्डक। तो पिण्डपात करने जा रहे हैं, आज कहते हैं, भिक्षा करने जा रहे हैं। जब हम खाने लायक हैं तो हमें भोजन चाहिए। जब हम खाने लायक नहीं हैं.... एक शरीर छूटा, दूसरा शरीर मिला, बीच में ऐसा कोई रिक्त स्थान नहीं जहाँ तुम्हारे पूर्वज पड़े हों और वह भी तुम लोगों से आस लगाये हों कि आओ भइया! भोजन दो, नहीं तो गया प्राण... ये मध्यकाल में लिखी गयी स्मृतियों की व्यवस्था थी जिसे अतिरंजित कर दिया गया।

ये शरीर छूटा, वो शरीर मिला। बीच में ऐसा कोई गड्ढा नहीं जहाँ पूर्वज पड़े हों। और अच्छी अवस्था है हमारी, सात्विक गुण का कार्यकाल है, स्तर उन्नत है तो देव इत्यादि उन्नत योनियाँ पा जायेगें। भजन पूरा हो गया तो स्थिति पा जाओगे। मध्यम है तो मनुष्य जन्मोगे। निम्न है तो पशु इत्यादि का जन्म होगा। हर हाल में जन्म होगा तो दाल-रोटी कौन खायेगा?

पूर्वजों ने यह व्यवस्था इसलिए दी थी कि यह हमारी संस्कृति है कि माता-पिता, दादा... इनके प्रति हमारी अटूट श्रद्धा बनी रहे, श्रद्धा का सूत्र कभी न टूटे, वृद्धावस्था में किसी प्रकार का कष्ट न हो, अपना दायित्व समझकर लोग लगें। यह हमारी संस्कृति है।

दान एक ऐसी वस्तु है, **'जेन केन बिधि दीन्हे दान करइ कल्यान'**- किसी भी विधि से कर दो, दान तो कल्याण ही करता है। समाज इकट्ठी हो, फलाने स्वजन हमारे बीच से चले गये, सत्पुरुष थे, ऐसे थे, वैसे थे, आज एक खम्भा टूट गया। जब नेता लोग मरते हैं तो कितनी लच्छेदार भाषा बोलते हैं- ओह हो.... पार्टी का एक स्तम्भ उखड़ गया, हम अनाथ हो गये। और भीतर-भीतर कहते हैं- भले ससुरा चला गया, सीट खाली हो गयी। और कर क्या रहे हैं! सब बनावटी बोल रहे हैं। लेकिन आपका कोई स्वजन मरता है, जिस घर में, परिवार में, जिस माहौल में तो घड़ियाली आँसू नहीं रोते। वह सचमुच के आँसू होते हैं, वो वेदना के आँसू होते हैं। उनकी वेदना को सांत्वना दिया लोगों ने, उसके लिए दान-पुण्य कर दिया। इस परम्परा से आपका भी वही होगा। बुढ़ौती तो सबको आना ही आना है। ये हमारी संस्कृति है। इस बहाने से दान-पुण्य कराया, भागवत कथा करवायी। महत्व कथा का है, चिन्तन का है।

प्रत्येक काण्ड पर, घटना पर जाकर पुर का हित करनेवाला -पुरोहित- आपको ये बताता है कि मनुष्य क्या है?, हमें भजन किसका करना है?, कैसे करना है? कर्त्तव्य का बोध कराना कर्मकाण्ड है। कर्त्तव्य का बोध कराना, दान-पुण्य करना, स्वजनों के प्रति श्रद्धाञ्जली देना - यह हमारी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें भजन भी छिपा हुआ है। जो हम दान-पुण्य और सुमिरन करते हैं, बस साधना के अंश हैं; किन्तु हमारा कोई पूर्वज गड्ढे में नहीं पड़ा है।

गुरु महाराज जब सती अनुसुइया पहुँचे। घनघोर जंगल में कोई नहीं... बियावान। सवा सौ साल पहले वहाँ एक महात्मा रहे, फिर चले गये धाम तो कुटिया उजड़ गई, एक तखत पड़ा हुआ था। गुरु महाराज उसी तखत पर

बैठ गये। तखत से आवाज आई- ये हमारी जगह है। महाराज कहे- ये सूखा काठ बोल रहा है। कहता है, हमारी जगह है। दूसरे दिन ठीक रात के नौ बजे, दिया-बत्ती कुछ नहीं, न महाराज के पास माचिस है। एक कमण्डल है, एक छड़ी का टुकड़ा और कुछ नहीं। दूसरे दिन आवाज आई– हम पतित हो गये हैं, ये हमारी जगह है। तीसरे दिन आवाज आई– आपकी जगह नीचे है। तो महाराज बोले– पतित होने के बाद भी इतना जानते हैं कि हमारी जगह भी नीचे है तो कोई महापुरुष हैं। जब यह पतित ही हो गये हो तो हम उनकी जगह पर क्यों रहें, हम अपनी जगह पर जाएँ।

महाराज उठे और नीचे चले आए। एक ब्रह्मशिला थी, उस पर बैठे तो भगवान ने संकेत दिया– नहीं, थोड़ा दक्षिण की ओर बढ़ जाओ। एक चबूतरे के किनारे बैठे तो शगुन मिला– थोड़ा उत्तर बढ़ जाओ। जब चबूतरे के बीच में आये तो आदेश हुआ कि बैठ जाओ। जब बैठ गए, तब भगवान ने समर्थन किया– जनम भर यहीं रहना है, आपकी जगह यही है।

चौदह उपवास हुए। खाना-वाना कुछ भी नहीं, भगवान कहें– बैठो तो बैठे हैं। आज्ञापालन ही तो भजन होता है, ईश्वर-पथ में खाली आँख मूँदना काम नहीं देता। लगे थे अपने श्वांस में। चौदहवें दिन पेशाब में खून जैसा कुछ प्रतीत हुआ.... लाल-लाल। महाराज को लगा, खून गिर रहा है, तब भगवान से कहा। महाराज बताते थे- हो, हमने कहा नहीं, झटके से मुँह से निकल गया, 'इष्टदेव बने बैठो हो, घोर जंगल में लाकर पटक दियो, न कुछ खाये का, न कुछ पिये का। जब शरीर ही नहीं रहेगा तो भजन कौन करेगा?' उस दिन भगवान ने कहा- ठीक है, जब खाना ही है तो कल से खाओ। महाराज कहें- भगवान कहें जब खाये के हैं तो कल से खाओ। तब महाराज घबड़ा गये कि भगवान ने रुखा वचन क्यों कहा कि जब खाये पे उतारु हो तो कल से खाओ। आखिर प्रभु हमसे चाहते क्या थे?

तब पुनः अनुभव में आया कि यदि तुम इक्कीस दिन न खाते तो जनम भर खाना न पड़ता। जैसे के तैसे बैठे रहते, रंचमात्र भी चेहरे पर शिकन न पैदा होती, प्रसन्नता न भंग होती, लेकिन तुम तो चूक गये। महाराज जब ये

बात बतावें तो बाल उखाड़ के फेंक दे, बोले कि- का बताएँ, सात दिन तो बाकी रहा, उहो बीत जाता। भगवान भी इतनी कड़ी परीक्षा लेते हैं। का बताएँ, अरे! कह देवे के चाहत रहा- अरे बेटा! सात दिन और धीरज धर, तो भगवान का क्या बिगड़ जाता। फिर बहुत बिगड़ें अपने ऊपर।

महाराज ने बताया- हूँ... देखो, आज्ञापालन ही भजन है। भगवान कहते हैं- यहाँ बैठ, तो तुम्हारी जगह वही है। हो, खूनवा देख के हमें करुणा आ गई, नहीं तो कोई बात नहीं थी। मन में बड़ी प्रसन्नता थी। भूख नहीं सता रही थी।

दूसरे दिन महाराज ने सोचा- मैं खाऊँगा क्या! तो सिढ़ियों पर वहाँ जंगल में चना पड़ा दिखाई दिया, आधा मन... करीब 20 किलो। दृष्टि पड़ते ही भगवान ने शगुन दिया- आज यही खाना है। कच्चा चना कोई कहाँ तक चबायेगा! एक मुट्ठी चबाकर पानी पी लिया। एक खप्पर था उसमें आधा किलो रख लिया। इतने में बंदर पेड़ों से उतर कर आये और टपाटप बीनकर खा गये। ये था भोजन। और फिर चला क्रम आकाशवृत्ति से। आकाशवृत्ति से ही महाराज की व्यवस्था होने लगी, कभी कोई कमी नहीं। न तो बँधा था, न भिक्षा करते थे, न करने देते थे। न खेत न क्यारी, न बाग न बगीचा। महाराज कहें- हो! मोर व्यवस्था भगवान करत हैं। और भगवान ही करते थे।

काफी समय बीत गया, महाराज ने पूछा- ये गिरे पड़े मकान किसके है? पच्चीसों खण्डहर पड़े हैं। तो लोग बोले- एक सिद्धबाबा थे। उन्हीं का ये आश्रम है। उनकी शिष्य-परम्परा में एक लड़का जीवित है। महाराज ने बुला लिया- क्यूँ रे! तू सिद्धबाबा का नाती है? तो वह बोला- हाँ महाराज!

वह गिलहरी जैसा मरियल गोरा-सा लड़का आया, तो महाराज बोले- अच्छा ठीक। क्या कर रहा है?

वह बोला- ठाकुरों के यहाँ पेट जियावत हूँ, और का करत हूँ।

महाराज बोले- तुम यहाँ रहो, तुम्हें खाना मिलेगा।

महाराज ने सोचा, एक साधु का भटका हुआ लड़का है, चलो कोई

बात नहीं। तीसरे दिन वह बोला- महाराज! हुकुम हो तो ठाकुरों को बता आता कि मैं महाराज के पास हूँ। महाराज बोले- अच्छा, अच्छा! जाओ, कह के आना।

आया तो उतनी बड़ी एक लड़किया ले आया, कोई 15-16 साल की, गिलहरी जैसी एक लड़की। महाराज बोले- इ कौन है रे? वह बोला- मोर मेहरिया है। महाराज बोले- धत तेरे ऐबी की! एकउ बार नहीं बताया कि हमरे पास मेहरिया भी है। भाग यहाँ से, अब नहीं जरूरत है।

अब लड़किया वहाँ बैठ के रोवे और लड़कवा उधर रोवे। महाराज कहे- हे भगवान! **'दया बिन सन्त कसाई, दया करी तो आफत आई।'** कहाँ हम दया में पड़ गए! ई तो फाँसी दे दिया। हल्ला हो गया चित्रकूट में चारों तरफ कि लगता है, महाराज के लड़का-लड़की या बेटवा-पतोहू आए हैं, महाराज का परिवार आया है।

महाराज ने तीन महीने में गाँव में उनकी जगह बनवाकर उन्हें गाँव भेज दिया। फिर महाराज के मन में विचार आया कि ये सिद्धबाबा प्राप्तिवाले महापुरुष हैं। जरा सा चूक गए। मरते समय परिवारवाले आ गए थे ढूँढते हुए। महापुरुष के पास कल्याण की आशा से बैठे हुऐ थे जो साधु, उनसे राग-द्वेष करने लगे। जो सदगुरु के पास कल्याण के लिए आया है, उसे प्रापर्टी से क्या मतलब! वो किनारे हो गये। तब सिद्धबाबा का शरीर छूटते ही गद्दी पर बैठा उनका भतीजा, दस महीने रहा और बोला- मैं इस लायक नहीं हूँ, और भाग गया। तो उसका छोटा भाई बैठा। दस ही महीने रहा, घनघोर जंगल, सिद्ध बाबा के चेलों ने ही उसको काट डाला। अरे, कोई धक्का देने से साधु होगा? अच्छा चरित्र नहीं रहा होगा, और क्या! फिर उसका छोटा भाई बैठा तो दो-एक औरत लेकर जंगल में पड़ा रहता था। गाँव के बाजू में, बगिया में, वह कभी आया ही नहीं था। उसी का एक लड़का यह था। तो महाराज कहे- तू असली दोगला है। एकउ बार नहीं बताया कि मोर बियाह हो गया है।

सिद्ध बाबा से भूल कुछ नहीं हुई। घरवाले आकर उनके आश्रम में टिक गए, उन्होंने मना नहीं किया - इतनी सी भूल हुई। साधु होना मरना बराबर है। और कोई हमारा है भी, लेकिन घरवालों के नाम पर कोई नहीं।

फिर महाराज भजन में लग गए, छः महीने तक सिद्धबाबा के लिए माला टाला, तब बोले- वह पार हो गए। तब उसको बुलाया लड़के को, बोले- देख! गया हो आ। वह बोला- गया में हमारी श्रद्धा नहीं है। तो महाराज बोले- तुम्हारी श्रद्धा से कुछ होनेवाला भी नहीं है, न गया में ही कुछ होनेवाला है। जो कुछ करना था, मैंने कर दिया। सिद्ध बाबा पार हैं। ई मर्यादा है रे, ये हमारा तीर्थ है, मर्यादा है, इसलिए तू जा। तीर्थ की मर्यादा रह जाएगी। देखा-देखी लोग आया-जाया करेंगे। ऐसा न होने से भष्टाचार फैलता है। तो वह बोला- महाराज! अकेले कैसे जाऊँ? महाराज के चरण दबा रहा था एक स्थानीय नाई भगत। महाराज बोले- इसको लेता जा।

अब पण्डित लोगों ने अड़ंगा लगाया- पहले गुरुमंत्र ले ले, तब जा। कई पंडित मंत्र देने को तैयार थे। बगैर मंत्र के गया में पिण्डा नहीं पड़ता। नाई बोला- ना! मैं मंत्र तो महाराज से लूँगा। वह भाग के आया, बोला- महाराज बगैर मंत्र के गया सिद्ध नहीं होता। पंडित फलाने-फलाने मंत्र दे रहे थे, मैं मंत्र नहीं लिया हूँ, हमें मंत्र दे दो। महाराज जी की गाली स्पेशल रहे, वही गाली बोल दिए। फिर बोले- ओम्, राम, शिव - एकाध नाम का जाप किया कर। इतने दिन सेवा करते हो गया, अभी मंत्र नहीं मिला।

वह गया पहुँचा तो पण्डा बोले- गुरुमंत्र बोलो। तब महाराज जो गाली दिए थे, नाई ने वही बोल दिया। तब पण्डा बोले- अरे! देखो हमें गरीयावत है। पण्डे फिर बोले- और कुछ कहे रहे महाराज? तो वह नाई बोला- ओम, राम, शिव - यहीं तीनों नाम कहे रहे। तो पिण्डा पार के लौट आये।

महाराज बोले- जा बेटा, सिद्धबाबा पार हो गए। अब इस तखत में कोई खराबी नहीं है, और न आश्रम में कोई खराबी है। आज से विघ्न खतम। अन्यथा कोई अच्छा संत आये तो सिद्ध बाबा न बोलें, कोई ढोंगी आकर बैठे

तो दो हाथ मार के भगा दिया करें। स्वरूपस्थ महापुरुष सदैव अपनी गद्दी पर रहते हैं। हमारे गुरु महाराज भी आज हैं। अत्रि महाराज आज भी हैं। भगवान श्री कृष्ण हैं, राम हैं, कोई भी कहीं नहीं गया। कमी है तो हमारे श्रद्धा और समर्पण की। और भजन करने की सही विधि का कमी है। विधि है प्रेम। एक नाम का जाप करो। यह था गुरु महाराज का पिण्डदान।

रामचरितमानस के अनुसार, जब दशरथ की मृत्यु हो गई तो- **'सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई।।'**- सरयू के किनारे बड़ी सजाकर चिता तैयार किया। लगता था, देवलोक तक पहुँचाने वाली सीढ़ी बनी हो।

**एहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्ही।**
**बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही।।**

इस विधि से दाह-संस्कार किया और विधिवत स्नान करके तिलांजलि दिया। हाथ में तिल लेकर, पानी लेकर तिलांजलि दिया। तेल में शरीर को डूबा दो तो वह शरीर महीना भर आप रखिए। भरत नहीं आये थे तब तक दशरथ के शरीर को तेल में डुबाकर रखा था। तो- **'बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही।'**, फिर किया दान-पुण्य।

**जहँ जस मुनिबर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सबु कीन्हा।।**
**भए बिसुद्ध दिए सब दाना। धेनु बाजि गज बाहन नाना।।**

फिर हाथी, घोड़ा, गज, बैल, गाय सब दान कर दिया इस शुभ अवसर पर। भरत जब राम से मिलने गये चित्रकूट में और पिता का जब संदेश सुनाया तो राम भी विकल हो गये।

**नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा।।**
**मुनिबर बहुरि राम समुझाए। सहित समाज सुसरित नहाए।।**

जब सुना कि दशरथ का शरीर छूट गया, सुनते ही राम जी ने **'दुसह'**- असहनीय दुःख प्राप्त किया। मुनिवर ने बार-बार राम जी को समझाया। **'सहित समाज सुसरित नहाए।'** अच्छी, पवित्र सरिता में सबने स्नान किया।

बाद में, **'करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक तम तरनी॥'**- जैसा वेदों में रीति-रिवाज का वर्णन है, वैसे ही पिता की क्रिया किया और राम हो गये पवित्र। भवसरिता से पार करने वाले राम स्वयं हो गये पवित्र। **'पातक तम तरनी'**- पापरूपी अंधकार की नदी को पार कराने वाले राम पवित्र हो गये।

**सुद्ध सो भयउ साधु संमत अस। तीरथ आवाहन सुरसरि जस॥**

सारे तीर्थों का मन ही मन सुमिरन किया और इतने पवित्र हो गये जैसे गंगा में नहा लिये हों। अब चित्रकूट में कहाँ गंगा जी बैठी है? लेकिन मन से संकल्प करके उन्होंने स्नान किया।

जब गीध की क्रिया किया तब **'अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम।'**- **'अबिरल भगति'**- जो भक्ति कभी आपको बीच में न त्याग दे, मोक्ष देकर दम ले, ऐसी सदा रहने वाली स्थायी भक्ति का वरदान लेकर गीध हरि के धाम चले गये। **'तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥'**- यथोचित क्रिया राम जी ने अपने कर-कमलों से किया।

सम्पाती के पंख जले हुए थे, समुद्र के किनारे पड़ा हुआ था एक कन्दरा में। जब बन्दरों ने संदेशा दिया कि आपका भाई जटायु माता सीता की रक्षा में रावण से लड़ा। वृद्ध होने की वजह से रावण थोड़ा बीस पड़ा, उसने वीरगति पायी।

**सुनि संपाति बंधु कै करनी। रघुपति महिमा बहुबिधि बरनी॥**

**मोहि लै जाहु सिंधुतट देउँ तिलांजलि ताहि।**
**बचन सहाइ करबि मैं पैहहु खोजहु जाहि॥**

मुझे समुद्र किनारे ले चलो, मैं अपने बंधु को तिलांजलि दूँगा। वचन से सहायता करूँगा। जिसको तुम खोज रहे हो, अवश्य प्राप्त कर लोगे।

**अनुज क्रिया करि सागर तीरा। कहि निज कथा सुनहु कपि बीरा॥**

पहले समुद्र के किनारे अनुज की क्रिया की, तिलांजलि दी और फिर

बन्दरों को सीता का पता बताया। संपाति के जले हुए पंख उग गये, वह उड़ चला।

यह है हमारी परम्परा, रीति-रिवाज! इस शुभ अवसर पर दान देना और पूर्वजों को विधिवत स्मरण करना, उनसे कल्याण की मंगलकामना करना.... किन्तु मुक्ति कब हुई? केवट के पास जब राम पहुँच गये तो केवट बोला- प्रभो! **'बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।'** पर बगैर चरण धोये तो पार नहीं ले जाऊँगा। चरण की धुलाई किया, तो-

**पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।**
**पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार॥**

पहले भगवान के चरणों को धोया, फिर खुद जल पिया, पूरे परिवार को भगवान के चरणामृत का पान कराया, पितरों को पार किया और **'मुदित गयउ लेइ पार'**- तब भगवान को बड़ा प्रसन्नचित, सफल मनोरथ होकर प्रभु को उस पार ले गया।

केवट के पूर्वज गंगा में ही मरे थे, गंगा में ही बहे थे, मुक्त कोई नहीं हुआ। मुक्त तब हुआ जब प्रभु के चरण की धुलाई किया, उसको खुद पान किया, परिवारों को पान करने को दिया और पितरों को दे दी वहीं अंजली। **'पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार।'**- आज उसके पितर तरे। युगों से उसके पितर वहीं पर मरते-जीते थे गंगा जी के ही बीच में, लेकिन तरा कोई नहीं। वह पितर तरे तब जब केवट, उसके वंशजों ने राम के चरणों को धो लिया।

रावण जब मर गया, वही दशा रावण की हुई।

**कृपादृष्टि प्रभु ताहि बिलोका। करहु क्रिया परिहरि सब सोका॥**

राम ने रावण को कृपादृष्टि से देखा, तब राम मुस्कुराये- इसके लिए शोक मत करो। ये हमारे धाम पहुँच गया, मेरे निवास पर पहुँचा। सारे शोक को त्याग दो, तुम केवल क्रिया करो। जो लोकरीति है, उसको करो- **'करहु क्रिया परिहरि सब सोका।'**

भगवान की कृपादृष्टि से ही रावण को मोक्ष मिला और भगवान ने कहा- निश्चिन्त हो जाओ, उसके लिए चिन्ता करो ही मत। हाँ, जो सामाजिक रीति है, वह क्रिया अवश्य कर डालो। तो, **'कीन्हि क्रिया प्रभु आयसु मानी। बिधिवत देस काल जियँ जानी॥'**- भगवान के आदेश का पालन करके रावण की अन्त्येष्टि की गयी। विधिवत किया, देशकाल व परिस्थिति के अनुसार किया। कदाचित् झगड़ा न हुआ होता, लंका धूल में न मिली होती तो महाराजा रावण मरते तो क्रिया कुछ और ऊँचाई से होती। लेकिन देश, काल और परिस्थिति के अनुसार क्रिया किया अवश्य।

**मंदोदरी आदि सब देइ तिलांजलि ताहि।**
**भवन गईं रघुपति गुन गन बरनत मन माहि॥105**

मंदोदरी ने भी तिलांजलि दी। स्त्री-पुरुष सभी तिलांजलि दिया करते थे। इस प्रकार ये जलांजलि, तिलांजलि मिली थी दशरथ को। राम जी ने भी वही किया गीध-क्रिया में। सम्पाती ने भी तिलांजलि दी, किन्तु पार तब हुए केवट के पूर्वज, पितर लोग तब पार हुए जब प्रभु के चरण धो लिये, और रावण तब पार जब भगवान ने कृपादृष्टि से देख लिया।

यह हमारी परम्परा है। यह सिद्ध होता है कि पूर्वजों के पीछे ये जलांजलि, तिलांजलि, पिण्डदान होता आया है। संसार भर के लोग किसी न किसी रूप में पूर्वजों का सम्मान करते ही हैं। पारसियों में सात दिनों तक मांस खाना मना है पूर्वजों की शान्ति के लिए, वो भी कर रहे हैं। मुसलमानों में चालीसवाँ होता है, बड़े-बड़े मकबरे बनाते हैं, उनकी याददाश्त और शान्ति के लिए। हिन्दुओं में गया पहुँचाते हैं, दान-पुन्य करते हैं। और कहीं-कहीं मिस्र इत्यादि में पिरामिड बनाकर, यहाँ जो सुख पा रहे हैं माता-पिता, आगे भी वह सुख पावें, तो भोग्य सामग्री उसके कब्र में ही बन्द कर देते हैं ताकि वहाँ सुखी रहें, खाते-पीते रहें, मस्त रहें। पूरे संसार में किसी न किसी रूप में अपने पूर्वजों को, अपने माता-पिता को श्रद्धांजलि तो लोग देते ही हैं।

युद्ध में वीरगति प्राप्त हुए सम्बन्धियों को युधिष्ठिर जलांजलि दे रहे

थे, इतने में कुन्ती ने कहा- कर्ण को भी देना, वे तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता हैं। तो युधिष्टिर ने कहा- माते! वह सूतपुत्र हमारा ज्येष्ठ भ्राता भला कैसे हो गया? तब बताया कि नहीं, वह तुमसे भी ज्येष्ठ, तुम्हारे सगे भ्राता हैं। वह कौन्तेय है, सूतपुत्र राधेय नहीं है।

तब युधिष्ठिर बोले- माताजी, आपने यह छुपाया क्यों? वह बोली- लोकलज्जा बेटा। युधिष्ठिर को बड़ी ठेस लगी, वह बोले- माता जी, भाई के द्वारा भाई को मरवा डाला आपने। जाओ, मैं स्त्री-जगत को श्राप देता हूँ कि आज से स्त्रियों के मन में कोई बात पचेगी ही नहीं।

आज भी भले पति को फांसी हो जाय लेकिन स्त्रियों के मन में बात नहीं पचती। एक बार अकबर बोले- अरे बीरबल, ऐसी कौन मूर्ख होगी जो पति को फांसी लग जाये, ऐसी बात बतायेगी? कभी नहीं बतायेगी। बीरबल बोले- है तो जहाँपनाह ऐसा ही। अकबर बोला- तब हमें सिद्ध करके दिखाओ, प्रमाण चाहिए मुझे।

अकबर का साला बैठा था बगल में, खुसरो नाम था। बीरबल ने उससे पहले तू-तू-मैं-मैं किया। खुसरो बोला- तुम काफिर की जात, तुम्हें काट नहीं दिया तो मेरा नाम खुसरो नहीं। बीरबल ने कहा- मैं भी राजा हूँ, होगा तू बादशाह सलामत का साला, आज काट नहीं दिया तुम्हें तो मैं भी राजा नहीं। किया झगड़ा सबके बीच में और उसे इशारा कर दिया, वह जाकर सो गया।

बीरबल तमतमाकर पहुँचा घर, बोला- आज उस मियां को काट नहीं दिया तो मेरा नाम बीरबल नहीं। फिर बाहर निकल गया। थोड़ी देर में घूमकर आया बीरबल तो एक तरबूज में रंग भरकर, अपने राजकीय पोशाक का जो लम्बा वाला गमछा था, उसी में बाँधकर, ले जाकर खूँटी में टाँग दिया। उससे टपक रहा था बराबर खून... लाल रंग। औरत ने कहा- ये क्या? बीरबल बोला- हमने कहा था न आज कि वह होगा बादशाह सलामत का साला, मैं काट डालूँगा, उसकी गर्दन काट लाया हूँ। तुम किसी से बताना मत, नहीं तो कल हमारी गर्दन कट जायेगी, पूरा राजद्रोह है। अब मैं तुमसे ये बताता हूँ,

मुझसे तो यह घटना घट गई। किसी से कहना मत, नहीं तो कल हमें फांसी हो जायेगी। ये बाल-बच्चे अनाथ हो जायेंगे, तुम भी मारी-मारी फिरोगी। वह बोली- मुझे कौन गरज पड़ी कि मैं किसी से बताऊँ! भला अपने घर का मैं कैसे विनाश कर सकती हूँ!

अब बीरबल की पत्नी को घर में चैन ही न पड़े। भागकर खेत में जाय, फिर बाहर आवे। पहले घर में बनने वाले आधुनिक शौचालय कहाँ थे। राजा हो चाहे प्रजा, जाना तो बाहर ही पड़ता था। दूसरी स्त्रियों ने पूछा- बहन जी, आज आप बहुत उखड़ी-उखड़ी लग रही हैं, बात क्या है? वह बोली- अरे पूछो मत, बात बताने लायक नहीं है। वे बोलीं- क्या हम पर विश्वास नहीं। आप जरा हमारे कान में कह दो। तो उसने कह दिया कि खुसरो का गला काटकर, बीरबल लाकर टाँगे हैं घर में। उन्होंने कहा- हम किसी से नहीं कहेंगे, आप बेफिकर रहो।

रात भर में तो पूरा क्षेत्र जान गया। सुबह बीरबल को हथकड़ियाँ पड़ गयीं। बीरबल ने कहा- हुजूर, किस जुर्म में मुझे हथकड़ियाँ पहनायी गयीं? इतने में बेगम साहिबा चली आईं कि इसको बस फाँसी पर लटकाओ हमारे सामने। बीरबल बोले- भाई, जुर्म क्या है? वह बोलीं- हमारे भाई का तुमने कत्ल किया। बीरबल बोले- प्रमाण क्या है? तो वह सिपाहियों से बोली- जाओ, सिर लेकर आओ बीरबल के घर से।

सिपाही गये, सिर ले आये। खोला तो उसमें था तरबूज। तब अकबर बोला- बीरबल, यह सब क्या है? तब बीरबल बोला- हुजूर, औरतों के मन में बात नहीं पचती। अकबर बोले- तो वह खुसरो कहाँ हैं? बीरबल बोला- साला जहाँपनाह का, भाई बेगम साहिबा का, इन्हीं के पास होगा और कहाँ होगा। पता लगाया तो बेगम साहिबा के बगल वाले कमरे में ठाठ से लेटा हुआ था। इसलिए युधिष्ठिर ने श्राप दिया था कि जाओ, आज से स्त्रियों के मन में कोई बात पचेगी नहीं अर्थात् जलांजलि की परम्परा पुरानी है। युधिष्ठिर ने अपने बन्धुओं तो तिलांजलि दी। भगवान राम ने अपने पिता दशरथ को जलांजलि दी। ये श्रद्धा-सुमन भेंट करना होता है जिससे पीछे आने वाली

पीढ़ी अपने माता-पिता की सेवा करे, उनका आदर करे। इस परम्परा का निर्वाह करने लिए सुसंस्कार डाला है और यह उचित भी है। इसमें कोई खराबी नहीं है। ये बिल्कुल उचित है जिससे कि आबाल-वृद्ध पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुखी रह सके, स्नेहपूर्ण, सौहार्द्रपूर्ण जीवन व्यतीत कर सके। संसार में सौहार्द्र से बड़ा कोई धन नहीं है, कोई सम्पत्ति नहीं है।

हम संकल्प करके कुछ दे देते हैं, दान-पुण्य हो जाता है। **'जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान।'** लेकिन ऐसा नहीं होता कि पूर्वज किसी गड्ढे में पड़े हैं, पीछे आनेवाली पीढ़ी उनके भोजन-पानी की व्यवस्था करे - यह भ्रान्ति स्मृतिकारों की देन है। हमारे पूर्वज गड्ढे में कभी नहीं हैं। सारे के सारे गड्ढे में? हिन्दू हो भर जाओ तो पूर्वज गड्ढे में। वह गड्ढे में कभी नहीं रहते। इधर शरीर छोड़ा, उधर शरीर मिला, बीच में कोई रिक्त स्थान नहीं जहाँ पूर्वज गड्ढे में पड़े हों।

महाभारत युद्ध के समय अर्जुन भी घबड़ाया हुआ था, बोला- भगवन्! मेरे रथ को दोनों सेनाओं के मध्य खड़ा करें, मैं देख तो लूँ, मुझे किन-किन के साथ युद्ध करना है?

जहाँ रथ को खड़ा किया, अर्जुन लगा काँपने, बोला- प्रभु, मैं युद्ध नहीं करुँगा। कुलधर्म सनातन है, **'जातिधर्माश्च शाश्वता:'**- जाति-धर्म शाश्वत धर्म है। ऐसा युद्ध करने से शाश्वत धर्म, सनातन धर्म लोप हो जायेगा। फिर कुल की स्त्रियाँ दूषित हो जायेंगी, वर्णसंकर पैदा हो जायेगा और वह वर्णसंकर कुल और कुलघातियों को नर्क में ले जाने के लिए होता है। पिण्डोदक क्रिया लोप हो जायेगी, पितर लोग गिर जायेंगे। हम लोग समझदार होकर महान पाप करने को उद्यत हुए हैं। केशव! क्यों न इस पाप से बचने के लिए हमें प्रयास करना चाहिए। फिर धनुष फेंक दिया, रथ के पिछले भाग में लेट गया, बोला- केशव! भले में शस्त्रधारी कौरव मुझे मार डाले, मरना श्रेयस्कर है किन्तु युद्ध नहीं करूँगा।

एक धार्मिक भ्रान्ति ने अर्जुन को मौत के मुहँ में ढकेल दिया। जिस दुर्योधन ने माता कुन्ती समेत इन सब भाइयों को लाच्छागृह में ढकेल दिया,

जंगल में थे तो असुरों को नियुक्त कर दिया कि जब अर्जुन आँख मूँदकर भजन में बैठे तब इसको मार डालो। भला निहत्थे अर्जुन को वन में लेटा पाते तो छोड़ देते? एक धार्मिक भ्रान्ति ने अर्जुन को मौत के मुँह में ढकेल दिया। लेकिन भगवान श्रीकृष्ण ने कहा-

**कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।**
**अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन।।**

अर्जुन! तुझे इस विषम-स्थल में बने यह अज्ञान किस हेतु से उत्पन्न हो गया? न यह कीर्ति बढ़ाने वाला है, न ही कल्याण करने वाला है, न ही पूर्व वरिष्ठ महापुरुषों ने भूल से भी इसका आचरण ही किया है। तुझे यह अज्ञान किस हेतु से उत्पन्न हो गया?

अर्जुन ने सनातन धर्म की रक्षा का नाम लिया, शाश्वत धर्म की रक्षा के लिए प्राण देने को तैयार है, क्या धर्म के लिए प्राण-पण से खड़े हो जाना अज्ञान है? भगवान ने कहा- अर्जुन! न तो यह कीर्ति बढ़ाने वाला है, न ही कल्याण करने वाला है, न ही पूर्व महापुरुषों ने भूल से भी आचरण किया है। '**अनार्यजुष्टम्**'- यह अनार्यों का आचरण तुमने कहाँ से सीख लिया? तुझे यह घोर अज्ञान कहाँ से उत्पन्न हो गया?

जिसको अर्जुन सनातन-सनातन कह रहा था, वह एक रूढ़ि थी, वह एक कुरीति थी। पिण्डोदक क्रिया भी अज्ञान। और कुलधर्म सनातन धर्म और जातिधर्म शाश्वत कह रहा था - अज्ञान। पिण्डोदक क्रिया का लोप होगा, ये अज्ञान। वर्णसंकर अज्ञान। तो ये सब के सब प्रश्न हैं। आखिर सत्य है क्या? तब अर्जुन ने समर्पण कर दिया- प्रभु, ये सब अज्ञान है तो मैं इसके आगे कुछ भी नहीं जानता। तो सिद्ध है कि मैं बुझदिल हूँ, कायर हूँ।

**कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः**
**पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।**
**यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे**
**शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।2/7**

गोविन्द! ये सब अज्ञान है तो सिद्ध है कि कायरतारूपी दोष ने मेरे स्वभाव को नष्ट कर दिया है। '**धर्मसम्मूढचेताः**'- यदि ये अज्ञान है तो मैं धर्म के रास्ते में मूढ़ नहीं, विशेष रूप से मूढ़ चित्त हूँ। आप ही बताइए, सत्य क्या है जिससे मैं परम श्रेय को प्राप्त हो जाऊँ? मुझे साधिये, सम्हालिये। कदाचित् मैं आपके आदेश के अनुसार न चल सकूँ तो मुझे सहारा दीजिए। क्यों? क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ। स्पष्ट है, गीता गुरु-शिष्य-संवाद है।

भगवान ने कहा- अर्जुन!,

**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।**

**उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥**

अर्जुन! सत्य वस्तु का तीनों काल में अभाव नहीं, असत्य का अस्तित्व नहीं, वह है ही नहीं। इन दोनों का अन्तर तत्त्वदर्शियों ने देखा।

एक नवीन प्रश्न खड़ा हो गया कि तत्त्वदर्शी क्या है? आत्मा ही सत्य है, परम तत्व है, काल से अतीत है, अमृत-स्वरूप है। और भूतादिकों के सम्पूर्ण शरीर नाशवान हैं, आज है तो कल नहीं रहेंगे। अर्जुन! इसलिए तू युद्ध कर। शरीर नाशवान है इसलिए युद्ध कर। क्या पाण्डव पक्ष के शरीर अविनाशी थे? आधे रिश्तेदार इधर खड़े थे कौरव पक्ष में, आधे इधर खड़े थे पाण्डव पक्ष में। थे तो शरीर ही। शरीर है नाशवान। इस आदेश से तो यह भी सिद्ध नहीं कि वह केवल कौरवों को मारे। जहाँ भी शरीर दिखाई दे, चलाओ बाण।

फिर प्रश्न खड़ा होता है कि क्या शरीर मारने से मर जायेगा? दूसरी बात, शरीर नाशवान है तो भगवान किसकी रक्षा में खड़े थे? अर्जुन कौन था? क्या किसी शरीर की रक्षा में खड़े थे। भगवान आगे कहते हैं- वह मूढ़बुद्धि व अविवेकी है जो शरीर के लिए पचता है। यदि भगवान केवल शरीर के रखरखाव में खड़े हैं तब तो वह भी मूढ़बुद्धि और अविवेकी की श्रृंखला में आ जायेंगे। अर्जुन कौन?

वास्तव में गीता योगदर्शन है। आपके हृदय के दैवीय सम्पद् का सशक्त

गुण है, सर्वोपरि गुण है अनुराग। अनुराग ही अर्जुन है। '**अनुरागी के हृदय बसे, उदासीन के शीश।**'- अनुरागी के हृदय में भगवान सदा निवास करते हैं और उसका योगक्षेम प्रदान किया करते हैं। भगवान अनुरागी के रक्षक हैं, ये प्रश्न अलग।

शरीर नाशवान है तो क्या मारने से मर जायेगा? आगे कहते हैं कि-

**वासांसि जीर्णानि यथा विहाय**
**नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।**
**तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-**
**न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥**

पुराने जीर्ण-शीर्ण वस्त्र को त्यागकर मनुष्य जैसे नवीन वस्त्र धारण कर लेता है, ठीक इसी प्रकार भूतादिकों का स्वामी आत्मा जीर्ण शरीररूपी वस्त्र को त्यागता है, त्यागकर नवीन शरीररूपी वस्त्र धारण कर लेता है। इधर शरीर छूटा, उधर वस्त्र तैयार। तो शरीर ही कैसे मरे? शरीर का आधार है संस्कार। एक भी संस्कार बाकी है तो जैसा संस्कार है वैसा शरीर मिलेगा। अन्तिम संस्कार का कट जाना और शरीर के होने के कारण का मिट जाना, एक साथ घटित होता है।

अन्तिम संस्कार का मिट जाना और मन का अचल स्थिर ठहर जाना, और पुनः शरीर के निर्माण के कारण का समाप्त हो जाना एक साथ घटित होता है। ये एक योगदर्शन है। सदा के लिए शरीरों से मुक्ति मिल जायेगी। तो शरीर इधर छूटा, उधर वस्त्र बदला। बीच में कोई रिक्त स्थान नहीं है जहाँ गड्ढे में आपके पूर्वज पड़े हो इसलिए यह एक अज्ञान है।

आगे कहते हैं- यह पुरुष मेरा विशुद्ध अंश है।

**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।**
**मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥**

अर्जुन! यह जीवात्मा मेरा विशुद्ध अंश है। उतना ही पवित्र जितना मैं स्वयं हूँ। मेरा ही विशुद्ध अंश है। यह सनातन पुरुष है। मनसहित इन्द्रियों

के व्यापार को लेकर जीर्ण शरीर को त्यागती है, उसको त्यागकर नवीन शरीररूपी वस्त्र को धारण कर लेती है। मनसहित इन्द्रियों का व्यापार पशुओं में नहीं होता, पक्षियों में नहीं होता, यह केवल मनुष्यों में होता है। इधर शरीर छूटा और अगले शरीर में '**अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते।**'- उस शरीर में स्थित होकर यह जीवात्मा कान, आँख, त्वचा, जिह्वा, नासिका और मन का आश्रय लेकर अर्थात् इन सबके सहारे ही विषयों का सेवन करता है।

तामसी गुण के कार्यकाल में मृत्यु को प्राप्त पुरुष पशु इत्यादि निम्न योनि प्राप्त करता है। राजसी गुण के कार्यकाल में मृत्यु को प्राप्त पुरुष मनुष्य योनि प्राप्त करता है, और सात्विक गुण के कार्यकाल में मृत्यु को प्राप्त पुरुष देव इत्यादि उन्नत योनि को प्राप्त करता है। हर हालत में योनि प्राप्त करता है। देवता भी इस योनि के अन्तर्गत हैं। और वायु जैसे एक स्थान से गन्ध का अपहरण करके ले जाती है, दूसरे स्थान पर फैला देती है, ऐसे ही भूतादिकों का स्वामी यह आत्मा जीर्ण शरीर को त्यागती है, त्यागकर मनसहित इन्द्रियों के कार्यकलाप को लेकर दूसरे नवीन शरीर को धारण कर लेती है और उस शरीर में '**अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते।**'- मनरूपी अधिष्ठाता के माध्यम से पुनः विषयों में प्रवृत्त हो जाती है। किन्तु,

**उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।**
**विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥**

शरीर छोड़कर जाते हुए को, पुनः नवीन शरीर धारण करते हुए को मूढ़ लोग नहीं जानते। '**पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः**'- ज्ञानरूपी नेत्रवाले महापुरुष उसे भली प्रकार देखते हैं, कब कौन किस ऊँचाई पर है, कब कहाँ गया? ये उनके क्षेत्र की वस्तु है। इसलिए कोई ऐसा गड्ढा नहीं है जहाँ हमारे पूर्वज पड़े हों, और बच्चे लोग अगर खाना न दें तो 'त्राहि माम्..त्राहि माम्..' करने लगें।

हाँ, एक बात है। एक गड्ढा अवश्य है। कदाचित् मरने के बाद यदि तामसी गुण का बाहुल्य है तो हम हो गये हाथी तो आपका दिया हुआ आटा-भाटा क्या हाथी के पेट में जायेगा? यदि हम हो गये जलचर लो क्या कर

लोगे? हम कदाचित शेर ही हो गये.... महावीर स्वामी एक जनम में शेर हुए... आपका दिया हुआ यह पिण्डा शेर के मुँह में जायेगा? ये दान है, ये श्रद्धा-समर्पित है, व्यर्थ नहीं जाता। ये पूर्वजों के प्रति लगाव का सूचक है। श्रद्धा से हम देते हैं, प्रभाव भी पड़ता है।

संसार स्वयं में एक गड्ढा है। जब तक प्रभु की प्राप्ति नहीं तब तक तो गड्ढे में ही पड़ना है। **'राम कथा भवसरिता तरनी'**- प्रभु के चरनों में प्रीति होने से भवसागर, भव-कूप हो जाता है। **'यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा।'** पूर्वज अवश्य गड्ढे में पड़े हैं, और आप भी पड़े ही हो। **'भव सिंधु अगाध परे नर ते। पद पंकज प्रेम न जे करते॥'**- प्रभु के चरणों में प्रेम नहीं करते, अथाह भवसिंधु में पड़े हैं, बहुत बड़ा गड्ढा है। और जहाँ हमने प्रभु की कथा, प्रभु-प्राप्ति की साधना-पद्धति करना शुरू किया, **'राम कथा भवसरिता तरनी'**- वह सरिता में परिवर्तित हो जाता है। चरणों में और प्रीति होने से भवसागर भवकूप हो जाता है- **'यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा।'**- वे भवकूप में नहीं पड़ते।

सिंधु सरिता बना, फिर कुआँ बना। लेकिन कुएँ में गिर गये तब भी खतरा। तो **'गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥'**- गरुड़ जी! सुमेरु पहाड़ भी रजकण के समान हो जाता है यदि भगवान करुणा करके एक निगाह देख लें। **'गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥'**- विष अमृत में बदल जाता है, शत्रु मित्र हो जाते हैं और अथाह भवसागर **'गोपद सिंधु'**- गाय ने जमीन पर पाँव रखा, कुछ गड्ढा सा बना, चुल्लू भर पानी भर गया, बस इतना ही है आपके लिए समुद्र। फिर भी झटके में पाँव पड़ गया तो मोच जरूर हो जाएगी। कभी-कभी होता है। लेकिन आगे जब साधना बढ़ी, **'नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं॥'**- अथाह भवसागर भी सूख जाता है। समुद्र ही खत्म, गड्ढा ही खत्म। हर हालत मे ये गड्ढा खत्म होता है - एक प्रभु के चिंतन से, शरणागति से। पूर्वजों को सबसे बड़ा दान यही है। भजन एक परमात्मा का करो, वे भली प्रकार इससे प्रभावित होंगी।

पूर्वज हमारे गड्ढे में हैं तो ये रोटी-दाल नहीं खायेंगे। भजन ही भोजन है। उनको भोजन दो तो भजन का। प्रभु की शरणागति से गड्ढे से निकलेंगे। निकालने का और कोई तरीका नहीं है इसलिए एक प्रभु के प्रति शरणागति। यदि परिवार में कोई सचमुच साधु हुआ तो 21 पीढ़ी तर जाती है। सचमुच प्राप्तिवाला साथ है, पूर्वजों के निकालने का यही एक तरीका है।

महापुरुष जिस पशु-पक्षी को छू देते हैं उनको भी वही संस्कार मिल जाता है। गुरु महाराज ने एक सुग्गी पाल रखी थी। बड़ी टॉय-टॉय बोला करे- महाराज जी, महाराज जी, ब्रह्मचारी जी.... और खाना लाओ, पानी जाओ। बहुत प्रवक्ता थी वह सुग्गी। एक दिन मर गयी। अब जीव की तो आयु होती है तो महाराज कहें- मैं अपनी गोद में रखता था, अपने हाथ से उसको दाना-पानी देता था। आखिर महापुरुष के छूने से इन जीवों की कुछ भलाई होती भी है या नहीं। आखिर हमारी सुग्गी गयी कहाँ? तब महाराज के अनुभव में आया कि वह समरिया गाँव में नवल पण्डित के यहाँ कन्या बनकर उसने जन्म लिया है।

वहाँ से आठ किलोमीटर दूर गाँव है चित्रकूट में, तुरन्त नवल पंडित को बुलाया- क्यों, तुम्हारे बच्चे कितने हैं? पंडित बोले- महाराज, चार लड़के हैं। महाराज बोले- लड़की? पंडित बोले- बस महाराज, आपका आशीर्वाद मिल जाता। एक लड़की के लिए मैं बेचैन हूँ। महाराज बोले- हमारी सुग्गी गई है, तुम्हारे यहाँ जनम लेगी। ठीक से परवरिश करना।

फिर वह लड़की जनमी, नाम भी रखा सुग्गी। जब उसके शादी-विवाह का निमंत्रण लेकर आया तब महाराज ने कहा- बस बेटा, सुग्गी तुम्हारी। खूब दान-पुण्य करो, विदा करो। हमारा सम्बन्ध वहीं तक था कि महापुरुषों के छूने से इन जीवों को क्या लाभ होता है!

एक और सुग्गा पाल रखा था। पड़ गया बीमार। सात दिन से उसने कुछ खाया ही नहीं। तब महाराज उसको गोद में लेकर बैठे थे, सहला रहे थे, बोले- हो... यह छोटी सी जान, सात दिन से इसके पेट में दाना तक नहीं गया। ये कब तक जियेगा! दो-चार आदमी और बैठे हुए थे आजू-बाजू।

दिया-बत्ती हो गया था, शाम का समय था, अंधेरा हो चला था। 'ये कब तक जीयेगा ऐसे...' इतने में खाँसने की आवाज आई। सामने कुँआ है, कुँए के नीचे से। महाराज ने पूछा- कौन है रे? तब इधर से बोला- अहूँ-अहूँ। महाराज बोले- एक पल में वहाँ पहुँच गया, आखिर तू है कौन? तब इधर से बोला- अहँ-अहँ। तब महाराज बोले- बड़ा जादूगर है। घोर जंगल की बात। फिर महाराज ने डाँटा तो सामने मंदाकिनी है, उस पार से बोला। फिर सन से चला आया कुँए के सामने.... अहँ-अहँ...

महाराज बोले- बेटा समझ गये, यमदूत आये हैं, यमराज आये हैं इसको लेने। हमारे हाथ में है इसलिए इसकी हिम्मत नहीं पड़ रही है। ऐसा करो, तुम लोग जाओ अपने-अपने कमरे में। हमें देख लेने दो। सती सावित्री के हाथ से उसके पति को नहीं ले जा पाये तो हमारे हाथ से कैसे ले जाते हैं यमराज? मैं भी तो जरा देखूँ। तो एक उसमें से था नाई, बोला- नहीं महाराज, जब यहाँ यमराज ही चक्कर मार रहा है, आपके पास रहेंगे तो हमें कुछ ढाढ़स बँधा रहेगा। दूर मत भेजो, दुहाई महाराज की। महाराज बोले- अरे जा भाग, तुम्हारे लिए नहीं, वह इस सुग्गे के लिए आया है। तुम निश्चिन्त रहो। वह चला तो गया किन्तु उतनी दूर बैठ कर झाँके- देखो महाराज, ध्यान देइहो।

महाराज उस सुग्गे को लेकर अंदर कमरे में चले गये। रातभर बैठकर भजन कर रहे थे, उसकी श्वास देख रहे थे कि गरम-गरम हवा चल रही है। हाँ, अभी तो जिंदा है। बारह बजे भड़ाम से दरवाला खुला, जैसे कोई ताकत से ढकेल के खोल दे। तो महाराज कहें- तोरी हरामी की, भीतरै चला आवत है...। छड़ी लेकर दौड़े तो इतना लम्बा जंगली नेवला खरखर भागा। महाराज भी पीछे भागे। जब वह थोड़ी दूर निकल गये तो महाराज को चिन्ता हुई- अरे! सावित्री को एक स्वरूप धारण कर इधर भरमा दिया, और पीछे से उसके पति के गले में रस्सी बाँधकर ले गया यमराज। कहीं नेवले का रूप धरकर मुझे इधर बहका दिया, और पीछे से ले न जाय कहीं। तो महाराज कहें- जितनी ताकत थी उतनी लगाकर हम दौड़े वापस। दौड़कर आये, देखा तो श्वाँस चल रही थी। अभी तो बचा है। लेकर बैठ गए। इतने में सुग्गा बोला- सीताराम-

सीताराम-सीताराम-सीताराम.... महाराज कहें- यमराज आया रहा। यदि सीताराम-सीताराम ही जपते तो यह काल क्यों आता तुम्हें लेने। सुग्गा बोले- महाराज जी, भूख लगी, जरा ब्रह्मचारी जी को बुलाइए। जरा सत्तू दीजिए। महाराज जी ने सबको जगाया, बोले- बेटा, जी गया। काल आया जरुर था, लेकिन जी गया। तो **'संत दरस जिमि पातक टरई।'**-संतों के दर्शन से पाप पुण्य में परिवर्तित हो जाता है। फिर वह सुग्गा दीर्घकाल तक आश्रम में रहा।

कभी-कभी ये घटना भी घटती है। संकल्प शक्ति से अवश्य मिलेगा। ययाति को उसके लड़के ने अपनी जवानी दे दी, यह संकल्प की शक्ति थी। हुमायूँ बीमार था और उसके पिता बाबर हुमायूँ के खाट के पास बैठे थे। सात दिन से बैठे थे और बचने की कोई उम्मीद दिखाई नहीं दे रही थी। हकीम-वैद्यों ने जवाब दिया। तब बाबर उठा, हाथ जोड़कर कहा- हे परवरदीगार, यदि इसकी आयु पूरी हो गई तो मेरे आयु के जो दिन शेष हैं वो उसको दे दें और मुझे ले चलें। सात परिक्रमा उस खाट की किया और सर पटक कर बैठ गया। हुमायूँ की तबीयत सुधरने लगी और बाबर बीमार पड़ गया, दो महीने में शरीर टूट गया। तो संकल्प-शक्ति का महत्व है जब हम दिल से संकल्प कर सकें।

गुरु महाराज के यहाँ कैसे भी लोग बीमार हों, महाराज एक छड़ी मार दें तो ठीक हो जायं। हम पंखा चलाया करें, दो-चार घटना रोज घटे। घनघोर जंगल... वैद्य-डॉक्टर थे नहीं। राम भरोसे चल रहे थे। और ये मलेरिया बुखार.... जब बिगड़ जाता है मलेरिया तो तिजारी, चौथिया, अँतरा... एक दिन छोड़ के बुखार अँतरा कहलाता है। दो दिन बाद आये तो तिजारी कहलाता है, तीन दिन बाद चौथे दिन आवे तो चौथिया कहलाता है।

लोग आवें, कहें- महाराज! मैं चार महीने से मर रहा हूँ। कोई कहे- मुझे तीन महीने से बुखार नहीं छोड़ रहा। महाराज कहे- पापी कहीं का, धूनी में प्रणाम कर, मुड़ी पटक, खो विभूति...। और जहाँ मुड़ी पटके तो एक छड़ी उठा के मार दें। वह विभूति खाकर, सिकुड़कर बैठ जाए तब फिर महाराज हँसे, बोले- बेटा, बुखार का नम्बर कब है। वह बोले- गुरु महाराज, कल।

कोई कहे- परसों। महाराज बोले- जरा इसकी पारी बीता के आ तो, देख क्या होता है? और जब बुखार न आवे तब दही वगैरह लेकर दौड़े, बोले- गुरु महाराज, बुखार तो नहीं आया। महाराज बोले- जाओ बेटा, बुखार ठीक हो गया।

हजारों केस.... एक-दो नहीं। हमने पूछा- महाराज, ये सब क्या है? महाराज बोले- बेटा, भगवान जब स्वरूप देते है तो कुछ हथियार भी दे दिया करते हैं। जब हमको स्वरूप मिला, स्थिति मिली तब भगवान ने कहा- आज से यमराज का फंद कट गया, दुबारे कहा- गर्भवास से आज तुम्हारा छुटकारा हो गया। और फिर भगवान ने कहा- तुम्हारे वाणी में ये गुण है, तुम्हारे दाहिने हाथ में ये गुण है कि किसी को छड़ी मार दोगे तो यदि कल फांसी होनी तो फांसी टल जायेगी, सजा चाहे जो हो जाय। तुम्हारे बांये हाथ में ये गुण है कि सिर पर रख दोगे तो सब करम हो जायेगा। तुम्हारी विभूति में ये गुण है, तुम्हारी वाणी में ये गुण है। इस प्रकार जब भगवान अपनाते हैं तो कुछ हथियार भी दे दिया करते हैं। उसी के द्वारा मैं लड़त-भिड़त निश्चिन्त रहता हूँ। बेटा, भगवान पहरा देते हैं यहाँ।

ये जो आजकल चल रहा है पिण्डदान की भयंकरता, ये सब स्मृतियों की देन है। स्मृतियों में लिखा है- बारहो महीना ब्राह्मण भोजन दूध-दही द्वारा करायें, थाल लेकर चलो तो हाथ न हिलने पायें। चमार, कुत्ता और मुर्गा उस ब्राह्मण-भोजन को करते समय देख न पावें। यदि देख लेगा तो असुर खा लेंगे, खिलानेवाला को पुण्य ही नहीं होगा।

फिर लिखा- चतुर्दशी छोड़कर बाकी सभी तिथियों में बारहो महीने जो भोजन कराता है तो पितर लोग स्वर्ग में नृत्य करते हैं। और जब नहीं करायेंगे लोग तो पितर लोग सिकुड़ के सुईं की नोंक के बराबर हो जायेंगे। पितर गड्ढे में पड़े रहते हैं, बढ़िया भोजन कराओगे तो स्वर्ग पहुँचकर नाचेंगे, और नहीं खिलाओगे तो गड्ढे के नीचे चले जायेंगे, सूईं के नोंक के बराबर हो जायेंगे। और हजारों साल बाद यदि किसी ने खिला दिया तो फिर फुलकर कुप्पा हो

जायेंगे। इसका मतलब कि हिन्दुओं के पुरखा कभी गड्ढे से बाहर होंगे ही नहीं। बाहर हो जायेंगे तो फैक्ट्री ही चली गई, धन्धा ही चौपट हो गया। कोई ऐसा गड्ढा नहीं है। ये स्मृतियों की देन है।

फिर कहते हैं- पानी पीते समय लम्बे कान वाले बकरे, जिनके कान पानी में डूब जाए लाल रंग का बकरा है, उसके मांस का भोजन करा दो तो बारह वर्ष तक पितर तृप्त रहेंगे। तो यह भयंकरता जो है, ये स्मृतियों की देन है। स्मृतियों में ऐसा बहुत कुछ लिखा हुआ है, हमने तो एक-दो प्वाइंट संकेत किया है।

ये पिण्डदान जो होता है केवल श्रद्धांजलि है, माता-पिता का सेवाभाव है, पूज्य भाव है। ऐसा करने से पीछे की पीढ़ियाँ ऐसा ही करती रहेंगी। माता-पिता वृद्धावस्था में कष्ट नहीं पायेंगे। ये हमारी संस्कृति है लेकिन सेवा पिण्डदान नहीं।

**'मातु पिता गुर प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी।।'**
माता-पिता, भगवान और गुरु की वाणी पर विचार ही मत करो, कर डालो।
**'गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें।।'**
माता-पिता, स्वामी और प्रभु की शिक्षा का पालन करने से कुमार्ग पर चल दोगे तब भी आपका पाँव न कभी काँटों में पड़ेगा, न गड्ढों में पड़ेगा।

**जहाँ भगत मेरो पग धरे, तहाँ धरूँ मैं हाथ।**
**पाछे लागा सदा रहूँ, कबहुँ न छोडूँ साथ।।**

आप गड्ढे में पाँव डाल दो, गिरोगे नहीं, भगवान अपना हाथ बढ़ा देते हैं। इसलिए माता-पिता की सेवा जीते जी ही। और यदि जीते जी नहीं पार लगी, यदि महाप्रयाण को प्राप्त हो चुके हों तो श्रद्धा-सुमन भेंट करना - ये हमारी संस्कृति है। इससे अगले मासूम बच्चे सुसंस्कृत हो जायेंगे, पुश्त-दर-पुश्त सौहार्द्र, स्नेह व प्रेम में जीवन भी जीयेंगे।

**बोलिए, श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय ।**

# दीन कौन?

एक परमात्मा की शरण छोड़कर, उबक-तुबक कर कितना भी इकट्ठा कर लो आखिर दीन का दीन! किले ध्वस्त हो गये, चतुरंगिणी सेना चली गई... क्या किसी को उम्मीद थी?

एक बार पृथ्वी देवताओं, ऋषियों को लेकर पहुँची ब्रह्मा के पास कि भगवन्, हमारी रक्षा करो। देखते ही विधाता समझ गये कि इनका मसला क्या है।

**ब्रह्माँ सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।**
**जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई।।**

मेरा भी कोई बस नहीं चलेगा। जिसकी तुम दासी हो, पृथ्वी! वो अविनाशी है। हमारा तुम्हारा रक्षक है वह, उन प्रभु की शरण जाओ। सबने मिलकर प्रार्थना की–

**जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई।**

तो पृथ्वी दीन, देवता दीन। सबकी शरणस्थली केवल भगवान हैं।

भरत को कैकई ने चक्रवर्ती सम्राट का पद तो दिलवा दिया, उसे हटाया भी किसी ने नहीं, लेकिन भरत दीन था। उसने कहा-

**आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ।**
**देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ।।**

भगवान राम के चरण-कमलों का दर्शन किये बिना, यह जी में जो जलन है, वह कभी नहीं दूर होगी। '**कारन कवन**'? जब वह गये चित्रकूट, रामजी तो नहीं आये लेकिन खड़ाऊँ मिल गया। भरत ने खड़ाऊँ को गद्दी पर बैठा दिया और-

**नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।**
**मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति।।**

यह लकड़ी की माला है, इसको रख दिया, अब बतावें माला, क्या करें? इस चप्पल को हमने रख दिया ऊपर, चप्पल बतावें, क्या करें? लकड़ी की खड़ाऊँ से पूछते रहे और राजकाज करते रहे। खड़ाऊँ बोलता है क्या?

ख्याल ही खड़ाऊँ है। प्रभु के चरण-कमलों को हृदयरूपी गद्दी पर बैठा लिया और जैसे-जैसे भगवान हृदय से जागृत होकर देखते हैं कि इस भगत को क्या जरूरत है?, इसका हित किसमें है?, वही सुझाव बराबर धड़ाधड़ मिलता रहेगा। आगे थोड़ी दूर पर मौत खड़ी है, भगवान कह देंगे- आगे मत बढ़, यहीं रुक जा। भगवान शून्य से, पेड़ से, पत्तियों से.... हर तरीके से साधकों को सावधान करते रहते हैं। कमी है तो साधक द्वारा आदेश-पालन करने की। किन्तु मोह का रस्सा इतना मजबूत है, आज तक ब्रह्मा भी नहीं तोड़ पाया।

**मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।**
**तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला।।**

इसलिए भगवान के चरणों में जो ख्याल है, सुरत लग गयी वही खड़ाऊँ है। फिर साधना क्या, कैसे है?, संसार कितना जल गया, कितना बाकी है?, कितना पार हो गये, कितना दूरी? - भगवान सब एक-एक सूत का हाल बताते रहते हैं। **'मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति।'**

चौदह वर्ष बीत गये, राम जी नहीं आये तो-

**कारन कवन नाथ नहिं आयउ।**
**जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ।।**

कारण क्या है, नाथ नहीं आये? हमें कुटिल समझकर भुला तो नहीं दिया?

**रहति न प्रभु चित चूक किए की।**
**करत सुरति सय बार हिए की।।**

किसी भगत से, सेवक से चूक भी हो गयी, भगवान ध्यान नहीं देते। उसका हृदय कैसा है, उस पर भगवान निर्भर करते हैं। **'करत सुरति सय बार हिए की'**- सौ बार हृदय की जो लगन है, श्रद्धा है, भगवान उस पर ध्यान देते हैं।

**बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना।।**

यह जो तिथि निश्चित की थी (अवधि माने समय होता है), यह बीत गया... चौदह साल। आज अन्तिम दिन बीत गया, भगवान् नहीं आये तो मैं प्राण त्याग दूँगा।

**राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।**
**बिप्र रूप धरि पवन सुत आइ गयउ जनु पोत।।**

राम के विरह के सागर में भरत का मन डुबकियाँ लगा रहा था, इतने में हनुमान पहुँच गये जैसे डूबते हुए व्यक्ति के लिए तुरंत जहाज आ गई हो- **'आइ गयउ जनु पोत'**। जैसे डूबते हुए को नौका मिल गई हो, वह नौका आ गयी, हनुमान आ गये। हनुमानजी ने देखा- आँखों में आँसू थे। कुशवाली चटाई जो भरत चौदह साल पहले बिछा कर बैठे थे, उसी चटाई पर बैठे थे। वह घिस गयी थी, चौदह साल बहुत होता है। यहाँ थोड़ा-सा ऑटे-बॉटे लागत है तो गद्दा बदल देते हैं, बेडशीट बदल देते हैं, पलंग बदल देते हैं। चक्रवर्ती सम्राट के पद पर बैठा हुआ भरत! चटाई चौदह साल पहले बिछाई, घिस गई, तिनके इधर-उधर जा रहे थे, उसी पर बैठे मिले। बाहरी दिखावा तो जड़ जीव के हिस्से में पड़ गये। जब भगवान में लौ लग जाती है, उनका लक्ष्य - भगवान से सुरत की डोर न टूटे। भरत को होश हो, याद हो, तब तो शृंगार करे। शृंगार करने वाला तो कहीं चला गया।

एक महात्मा थे। उनसे भगवान ने कहा- एक वर्ष में फरसे से तुम्हारी गर्दन कट जायेगी। महात्मा ने साष्टांग दंडवत किया- प्रभु, सेवक पर इतनी बड़ी कृपा। मृत्यु का दिन एक वर्ष पहले बता दिया, अब मैं एक भी स्वास व्यर्थ नहीं जाने दूँगा सिवाय भजन के, राम नाम के।

वह डूबकर लग गये भजन में। महात्मा के भगत बहुत थे। वे आवें तो कहें- महाराज, यह खराबी, वह सही...। महात्मा बोलते- उसकी मौज से अच्छा ही हुआ। भगत बहुत खोपड़ी खायें तो महात्मा बोले- अरे! मैं तो कहूँ चलो गये रहो, फिर से कहो। भगत बोले- महाराज! ऐसा-ऐसा हो गया। महात्मा फिर कहते- हूँ... मैं तो कहूँ चलो गये रहो हूँ, फिर से कहो।

दो-चार बार कहकर लोग खुद ही ऊब जायें। महात्मा पागल नहीं थे, जी छुड़ाने के लिए ऐसा करते। भगत कहते- महाराज! भैंस बियाई है अठारह लीटर दूध वाली। महात्मा बोले- उसकी मौज से अच्छा हुआ। चार दिन बाद वह भगत दौड़कर आये, बोले- महाराज! पड़िया तो मर गई और भैंस ने दूध देना बन्द कर दिया। महात्मा बोले- चलो, उसकी मौज से अच्छा ही हुआ।

लोग कहते- फसल बहुत अच्छी है महाराज! महात्मा बोले- चलो उसकी मौज से अच्छा ही हुआ। लोग कहते- अरे महाराज! खलियान में तो आग लग गयी, गाँव भर का खलियान जल गया। महात्मा ने कहा- चलो, उसकी मौज से अच्छा ही हुआ। भला हो चाहे बुरा हो, उसकी मौज से अच्छा ही हुआ।

महाराज का एक अंतरंग भगत था। आश्रम में समय से झाड़ू लगाना, पानी भरना... सब काम वही करता था। उसका एक ही लड़का था, दुर्भाग्य से वह मर गया। महाराज को पता चला, दुःख तो महाराज को भी था। असह्य दुःख था, एक भगत का लड़का मर गया लेकिन भगवान का विश्वास कैसे त्याग दें।

तीन दिन बाद वह आया, महाराज बोले- बेटा, तीन दिन आये नहीं। वह बोला- महाराज! जो लड़का रहा आठ साल वाला, वह मर गया। महाराज बोले- चलो, उसकी मौज से अच्छा ही हुआ। उसको इतना बुरा लगा, क्रोध में तमतमाया और चला गया घर।

घर जाकर लगा फरसा में धार लगाने। हमारा सर्वनाश हो गया, कहते हैं- उसकी मौज से अच्छा हुआ, आज इन बाबाजी को काट डालेंगे। हमें नहीं

मालूम था बाबा लोग इतने निर्मोही होते हैं। अपने न खाकर इनको खिलाओ, घर का काम बिगाड़कर इनके यहाँ झाड़ू लगाओ, हमें नहीं मालूम था इतने निर्मोही होते हैं। कहते हैं, उसकी मौज से अच्छा हुआ, आज हम जरूर काट डालेंगे।

वह रातभर फरसा में धार लगाता रहा, एक पल नहीं सोया। पुत्र मोह इतना भंयकर होता ही है। फरसा लेकर चल दिया।

महात्मा लोग नित्यक्रियाओं से निवृत्त होने प्रायः थोड़ी दूर... एक-डेढ़ किलोमीटर दूर जाया ही करते हैं, यह नियम है। जंगल में रहने वाले महात्माओं का पक्का नियम होता है। वह रात-दिन का सेवक था, उसे मालूम था, पहाड़ उस पार किस झाड़ी में जाते हैं। वहाँ पहले ही से छिपकर बैठ गया, महाराज यहाँ आकर बैठेंगे और फरसे से गर्दन उतार दूँगा। कहते हैं, उसकी मौज से अच्छा हुआ। हमारा सर्वनाश हो गया, यह कहते हैं- अच्छा हुआ।

महात्मा का निश्चय था- हर समय एक स्वाँस व्यर्थ नहीं जाने दूँगा। वह भजन में...., नाम जपते हुए आधी आँख बन्द, आधी आँख खुली चले जा रहे थे उसी झाड़ी की ओर। करीब पहुँचे थे कि एक गड्ढा पत्तियों से ढँका हुआ था, और भीतर खड़ी खूँटी थी पैनी। पूरे शरीर का वजन उसी पर पड़ गया, धम्म... तो खूँटी भीतर से तलुआ पार करके इस पार हो गयी। खून ही खून। महात्मा कराहते हुए बैठ गये, आँखों में आँसू भी थे, चेहरे पर मुस्कान भी थी।

अब झाड़ियों में से उस भगत ने देखा, सोचा- अरे, महाराज को तो खूँटी गड़ गयी, अब जरा पूछकर देखूँ कि उसकी मौज से कैसा हुआ। तो फरसा छिपाकर वह पहुँचा, बोला- अरे महाराज! आपको तो खूँटी गड़ गई। महाराज बोले- बेटा, उसकी मौज से बहुत-बहुत-बहुत अच्छा हुआ। तो चेला बिगड़ा- क्या बहुत अच्छा हुआ... टिटनेस हो जाई तो ऐंठ के मर जाओगे। और ठीक भी होगा तो छः महीने से पहले नहीं होगा। पहले इतनी बढ़िया

दवाईयाँ कहाँ थीं। पहले लोग मूँज की रस्सी तेल में डुबाकर, आग में जलाकर तेल टपकाया करें ताकि खून बन्द हो जाय।

महाराज बोले- बेटा! आज फरसा से मेरी गर्दन कटने वाली थी, लेकिन राम नाम के प्रभाव से गर्दन बच गयी, खूँटी ही गड़कर रह गयी। यदि एक पाँव कट गया होता तो भी हम फायदे में रहते। भला इस शरीर से भगवान् ने भजन करने का अवसर तो प्रदान किया। इसलिए बेटा बहुत-बहुत-बहुत अच्छा हुआ।

वह सनका, बोला- अरे महराज! आपकी गर्दन काटने तो हम ही बैठे थे। विश्वास न हो तो यह फरसा देखिए। तब महाराज बोले- तुम्हारी हैसियत है हमारी गर्दन काटने की! चला फरसा! काट गर्दन!! वह बोला- अब तो नहीं है महाराज। महात्मा बोले- तू नहीं बैठा था। हमारा काल तुम्हारे अन्दर प्रेरणा करके बैठा था। लेकिन राम नाम के प्रभाव से उस काल की गति बदल गई, मृत्यु वाला काल कट गया। मृत्यु जरूर आयी, खूँटी गड़कर रह गई। यदि खूँटी भी नहीं गड़ती तो हम कैसे पता पाते कि काल भी आने वाला था, इसलिए यह जरूरी था।

सेवक उन्हें लाद-लूदकर लाया और सेवा करने लगा। सेवक तो था ही। तो होनी कैसी भी हो,

**गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही।।**
**गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई।।**

कागभुसुण्डजी कहते हैं कि- गरुड़ जी, यदि भगवान कृपा कर दें तो सिर पर सुमेरू पहाड़ भी गिरना है तो रजकण बनकर गिरेगा। भगवान की कृपा से विष अमृत हो जायेगा और शत्रु मित्र हो जायेंगे। अथाह भवसागर गाय के खुर के बराबर हो जायेगा, और अग्नि शीतलता प्रदान करने वाली हो जायेगी।

**नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं।।**
**मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के।।**

भगवान् के नामजप को मंत्र कहते हैं। मंत्र एक महान मणि है। असाध्य कुअंक लिखा है, मृत्यु लिखी है, मृत्यु जीवन में बदल जायेगी, दुःख सुख में बदल जायेगा, शत्रु मित्र बन जायेंगे, विपत्ति संपत्ति हो जायेगी, ग्रहदशा कट जायेगी।

जब भरतजी को देखा हनुमानजी ने-

**बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।**
**राम राम रघुपति जपत स्त्रवत नयन जलजात।।**

जटा का मुकुट था, **'कृस गात'**- खान-पान से बढ़ने वाला भरतजी का शरीर वह तो गल गया। चौदह वर्ष से कायदे से खाना तो खाया ही नहीं था। जटा उलझ गयी थी, वही मुकुट था। कंठ पर नाम था, आँखों में अश्रु थे, कृस गात था - इस दशा में हनुमान जी ने देखा भरत को, तो अपार हर्ष हुआ।

**देखत हनूमान अति हरषेउ। पुलक गात लोचन जल बरषेउ।।**

शरीर रोमांचित हो गया, आँखों से अश्रु छलकने लगे। रावन को सजा-सजाया देखा तो लंका फूँक दिया। भरतजी को भजन में तल्लीन देखा तो हनुमानजी के प्रेमाश्रु ही नहीं रुक रहे थे। हरिभक्तों को देखकर भक्तों को अपार हर्ष होता ही है। हनुमानजी ने कहा-

**जासु बिरहँ सोचहु दिन राती। रटहु निरन्तर गुन गन पाँती।।**
**रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता।।**

जिसके विरह में रात-दिन सोचते रहते हो वह भगवान् आ गये। इतना सुना कि राम आ गये, भरतजी उछल कर खड़े हो गये, गले से लिपट पड़े, बोले- हाल-चाल बताओ। तुरन्त भरतजी ने कहा-

**एहि संदेस सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं।।**
**नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही।।**

मैं तुमसे उऋण नहीं हूँ तात, अब भगवान् का चरित्र सुनाओ। हनुमानजी

ने कहा- अब चरित्र मत सुनो, वह जो चिड़िया उड़ रही आकाश में, वह है पुष्पक विमान, उसी में हैं राम। स्वागत की तैयारी करें।

भरत जी झोपड़ी से बाहर निकल कर आये तो पुष्पक उतर गया। अपार वानरी सेना उसी में थी- **'पदुम अठारह जूथप बंदर।'**। उस युद्ध में राक्षस तो मर गये, फिर कभी नहीं उठे लेकिन वानर एक भी नहीं मरा क्योंकि भगवान् ने शुरू में ही कहा था, तुम लोगों का विचार है कि मैं रावण का वध कैसे करूँगा, यदि तुम युद्ध देखना चाहते हो तो चलो। सब तैयार हो गये। इसलिये मर भी गये थे लेकिन अन्त में जीवित हो गये।

**सुधाबृष्टि भै दुहु दल ऊपर। जिए भालु कपि नहिं रजनीचर।।**

भालू-बन्दर तो सब जीवित हो गये। जो युद्ध के पहले दिन मर गया था वह भी जीवित हो गया, और निशाचर एक भी नहीं। भला अमृत भी पक्षपात करता है? यह पक्षपात कैसा? रामजी के राज्य में जीवों के साथ इतना पक्षपात? उसका कारण था- सभी असुर **'राम राम कहि तनु तजहिं, पावहिं पद निर्बान।'** राम कहाँ, मारो राम को...., राम-राम कहकर तो असुर मरे थे, वह तो चले गये धाम। और राक्षस-राक्षस कहकर वानर मरे थे इसलिए बेचारे पड़े थे वहीं पर।

**राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं।।**
**रामाकार भए तिन्ह के मन। मुक्त भए छूटे भव बंधन।।**

सारे असुर राम-राम जपते हुये मरे, राम के आकार में परिवर्तित हो गये, राम स्वरूप हो गये, राम में विलय हो गये। वहाँ कोई असुर था ही नहीं। और जो लड़का-बच्चा जपते-जपते मरे रहे, वह सब जीवित हो गये, जाओ देखो लड़का बच्चा।

**निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू।**
**सुमिरहु मोहि डरपहु जनि काहू।।**

मेरा सुमिरन करो, किसी से मत डरना। न ग्रह, न राहु, न केतु, न शुक्र, न शनिश्चर, न भूत-प्रेत..... किसी से डरने की कोई आवश्यकता नहीं।

**'सुमिरहु मोहि डरपहु जनि काहू'**- जहाँ एक भगवान् का सुमिरन होता है वहाँ राहु, केतु, शनिश्चर, ग्रहदशा भूत-प्रेत,जंत्र, मंत्र, तंत्र पहुँचते ही नहीं। उनके निकट भी नहीं आते। तो वहाँ राक्षस थे कहाँ, जिनको जिन्दा कर दें। वे राम के रूप में विलय पा चुके थे। ये लड़कों-बच्चों की चिंता वाले पड़े थे, सब जीवित हो गये।

वास्तव में दोनों दलों के ऊपर अमृत की वर्षा हुई, राम की सेना, बन्दर-भालू सब उठ गये, निशाचर एक भी नहीं जीवित हुआ। तब तो अमृत ने भी पक्षपात कर दिया, लेकिन ऐसा नहीं है , यह है मानस। आसुरी वृत्ति सदा के लिये शान्त हो गयी, राम के आकार में परिवर्तित हो गयी जिसके बाद जीवन में कभी अशान्ति नहीं रहती। साधक अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है, फिर मायारूपी नारी का प्रभाव साधक के ऊपर नहीं पड़ता। यह तभी संभव है जब इष्ट अर्थात् सद्गुरु हृदय से जागृत होकर अनुभव के माध्यम से साधक को उठायें बैठायें हर परिस्थिति में साथ रहें तथा धीरे-धीरे असुर अर्थात इन विकारों को शान्त करें। ब्रह्मआचरणमयी वृत्तियाँ ही वानरी सेना है, पूर्णतः विकसित हो जाती हैं। जब तक साधक आत्मस्थिति को नहीं प्राप्त कर लेता, तब तक यह साथ देती रहेंगी। स्वरूप की प्राप्ति के बाद यह भी विलय हो जायेंगी।

वानर बोले- हम भी अयोध्या देखेंगे। रामजी बोले- बैठो फिर। क्या गजब का विमान था! **'पदुम अठारह जूथप बंदर'**- अठारह पदुम तो सेनापति थे! और एक-एक सैन्य में कितने रहे होंगे? हमें लगता है जो आप लोगों की गिनती है, उससे परे... अपार....। जब गिनती भूल जाय तो अपार। आगे गिनती न हो तो अपार। अपार वानर बैठे पुष्पक में।

जब अयोध्या में सबको उतार दिया, रामजी ने पुष्पक से कहा- तुम अपने मालिक कुबेर के पास जाओ। पुष्पक ने सादर प्रणाम किया और चला गया। लाख वर्ष रावन घूमा, रामजी वानर दल के साथ अयोध्या आये, बाल-बियरिंग भी नहीं घिसा, मोबिल ऑयल भी कम नहीं पड़ा, न पेट्रोल भरना पड़ा.... क्या आविष्कार थे। अब सब वैज्ञानिक बने घूमते हैं। कभी भी दुनिया

में आविष्कार कम नहीं रहे, आविष्कार सदैव रहे। पूर्वजों के आविष्कार के सामने आज की दुनिया के आविष्कार नगण्य है।

**-- सीता दीन थी।**

हनुमान जी जब लंका गये सीता की खोज के लिए, अशोक वृक्ष के पल्लवों के बीच में बैठकर सीताजी को उन्होंने देखा।

**निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।**
**परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन॥**

सीताजी ने अपने अभीष्ट पद पर दृष्टि गड़ा रखा था। **'निज पद'** माने अपने पाँव में नहीं, **'निज पद'** = अपना परमधाम, अभीष्ट पद पर दृष्टि थी, भगवान् के चरणों में दृष्टि थी, मन रामजी के चरणों में लीन था।

हनुमान जी से परिचय हुआ, सीताजी को विश्वास हो गया कि राम के ही दूत हैं तब सीताजी ने संदेश दिया रामजी को-

**दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥**

**'दीन दयाल बिरिदु संभारी'**- प्रभु, आप दीनों पर दया करने वाले हैं, अपनी बिरुदावली को संभालें और मेरा भयंकर संकट हर लें प्रभु। तो सीता दीन थी। लंका में थीं तो दीन होना ही चाहिये था, लेकिन दीन की परिभाषा यह नहीं कि वह असुरों से घिरी हुई थीं।

हनुमान जी जब वापस गये, राम जी ने पूछा- कैसी हैं सीता? तुमने देखा? हनुमान जी बोले- हाँ। राम बोले- कुछ संदेश दिया? हनुमान जी ने कहा- प्रभु, सीताजी ने कहा है-

**मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहिं अपराध नाथ हौं त्यागी॥**

मन-क्रम-वचन से मैं चरणों की अनुरागी हूँ तो कौन-सा ऐसा अपराध है जिससे आपने मुझे त्याग दिया?

**सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहें भलि दीनदयाला॥**

विशाल विपत्ति है प्रभु, बगैर कहे ही भली है।

**निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।**
**बेगि चलिय प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति।।**

एक-एक क्षण एक-एक कल्प के समान बीत रहे हैं। शीघ्र ही चलिए और अपने भुजाओं के बल से असुरों को जीतकर सीताजी को ले आइए।

भगवान राम ने कहा- हनुमान, तुम हमारा समय नष्ट कर रहे हो, कारण कि-

**बचन कायँ मन मम गति जाही।**
**सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही।।**

मन-क्रम-वचन से मेरे चरणों का अनुरागी है, मेरी गति है, स्वप्न में भी विपत्ति उसका स्पर्श नहीं कर सकती। एक तरफ तो कहते हो- मन-क्रम-वचन से चरणों की अनुरागी है, दूसरी तरफ कहते हो, सीता पर विपत्ति बिसाल है। चरण-अनुरागी को विपत्ति असंभव है। होनी ही नहीं चाहिये। सपने में भी विपत्ति का आभास भी नहीं होना चाहिए।

**कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई।।**

हनुमान जी ने कहा- प्रभो! आपका भजन-सुमिरन जिन क्षणों में नहीं होता, वही विपत्ति, काल है। और कोई विपत्ति नहीं है। तो भईया, भजन नहीं करोगे तो विपत्ति ही विपत्ति है। और भजन करोगे तो कोई विपत्ति नहीं। और भजन करने के लिये कुछ त्यागना नहीं है। सब काम तो करते ही हो, एक काम जो जरूरी था, जिसके लिये दुर्लभ मानव तन मिला है, जो अति आवश्यक था मानव मात्र के लिये - एक प्रभु में श्रद्धा स्थिर करके नाम का जाप करो। चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाना खाते, पानी पीते, शौच जाते और जब तक जागो, स्मृति-पटल पर नाम बना रहे, सोने में सुहागा है। सुबह-शाम बैठकर आधा घण्टा समय अवश्य देना चाहिये। बस इतना ही करो।

और हम बड़े विद्वान हैं, हम बड़े भगत हैं - ऐसा अभिमान हुआ ही करता है। जब तक हम अलग, प्रभु अलग हैं, कहाँ हम बड़े भक्त हैं? जब तक दर्शन, स्पर्श और प्रवेश न मिल जाय तब तक पीछे मुड़कर नहीं देखना

चाहिए। अर्जुन को जब-जब अभिमान हुआ, भगवान् ने पटकनी दिलवा दिया, दिमाग ही ठण्डा हो गया। तो भजन एक प्रभु का।

रेगिस्तान में पचासों किलोमीटर कुआँ नहीं, पानी नहीं, नदी है ही नहीं लेकिन वो कैसे जिन्दे हैं? जीवित तो हैं कायदे से। लोगों ने प्याऊ लगा रखी है, पानी पिलाने वाले अड्डे बना रखे हैं। कोई भी भूखा-प्यासा आया तो उसको अन्न-जल मिलेगा।

एक प्यासा आदमी, अब प्राण गये तब प्राण गये, इस दशा में पहुँच चुका था, और चला ही जा रहा था। उसने सोचा कि बैठ गया तो मौत ही मौत है। चलता रहूँ, शायद कहीं पहुँच जाऊँ। जीवन की आशा की डोरी पकड़े चला जा रहा था।

एक कुआँ दिखाई पड़ा, चार लड़कियाँ खड़ी थी उस पर। वह बोला- प्राण संकट में हैं, जल्दी पानी पिलाओ। तो एक लड़की उठी, बोली- अंजली रोपो तो पिलावें। जहाँ अंजली रोपा तो दूसरी ने टोका, कहा- इसके हाथ से जल मत पिओ मुसाफिर, जन्म भर पछताओगे, रोने को आँसू नहीं मिलेंगे। वह बोला- बात क्या है? वह बोली- हमारा पिओ। उसने पूछा- आप कौन हैं? और यह कौन हैं? वह बोली- यह है बुद्धि। बुद्धि का क्या ठिकाना, आज सही, कल गलत, परसों सही। यह उठापटक लगा ही रहता है बुद्धि में। मेरा नाम विद्या है। विद्याविहीन बुद्धि किस काम की? **'विद्याविहीनः पशुरस्ति को वा'**- विद्या से हीन है तो पशु में और उसमें फर्क ही क्या है।

उसने अंजली रोपा और विद्या जब पानी पिलाने लगी तो तीसरी बोली- मत पियो मुसाफिर, बहुत पछताओगे। मेरा जल पियो। वह बोला- आप कौन? वह बोली- मैं हूँ लक्ष्मी। मेरे हाथ से जल पियो। विद्या का क्या भरोसा! चाहे कैसा भी विद्वान हो, इन लक्ष्मीपतियों के यहाँ कम्प्यूटर ही तो चलाता है, और क्या करता है! एक-एक सेठ के पास दो-चार सौ पढ़े-लिखे कर्मचारी होते हैं।

जहाँ अंजली रोपा तो चौथी ने टोका- मत पियो मुसाफिर, लक्ष्मी का

क्या ठिकाना। यह है चंचला, आज इस घर में, कल उस घर में, परसों गायब। **'काल जो बैठा मेड़ियाँ आज मसाना दीठ।'** लक्ष्मी का क्या ठिकाना, मेरा पानी पियो। वह बोला- आप कौन? वह बोली- मैं हूँ होनी, किस्मत, भाग्य। फिर उसने होनी का पानी पिया।

चित्तवृत्ति कभी बुद्धि के भरोसे, कभी विद्या के भरोसे, कभी लक्ष्मी के भरोसे आस लगाये ही रहती है। लेकिन यदि भाग्य में नहीं है तो नहीं मिलेगा। और भाग्य आपकी मुठ्ठी में है, कर्म के आधीन है-

**जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी।।**
**मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के।।**

भगवान के नाम का जप करो, यह मंत्र महान मणि है। असाध्य कुअंक, घोर नरक और यातना कर्म में लिखी हैं तो बदल जायेगी, दुःख सुख में बदल जायेंगे, शत्रु मित्र हो जायेंगे, होनी बदल जायेगी। अन्यथा-

**होनी के हाथ में तू एक खिलौना है।**
**उसने जो सोच लिया बस वही होना है।।**

होनी अवश्यंभावी होती है, लेकिन मंत्र महान मणि है। तो होनी का पानी पीने का एक ही तरीका है - एक प्रभु में श्रद्धा स्थिर करके, समर्पण के साथ एक प्रभु के नाम का जाप करो। मृत्यु जीवन में बदल जायेगी, दुःख सुख में बदल जायेंगे।

**मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई।।**
**सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ।।**

बुद्धि, कीर्ति, सुगति, विभूति, उपकार की भावना जिसने जब जिस प्रकार जहाँ से भी प्राप्त किया, वह सब सत्संग के प्रभाव से ही प्राप्त किया है। लोक और वेद में और कोई दूसरा उपाय नहीं है।

**।। बोलो श्री गुरुदेव भगवान की जय।।**

# शिव तत्त्व

**प्रभु समरथ सर्बग्य सिव सकल कला गुन धाम।**
**जोग ग्यान बैराग्य निधि प्रनत कलपतरु नाम।।**
**मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर।**
**जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न।।**
**जरत सकल सुर बृंद बिषम गरल जेहिं पान किय।**
**तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस।।**

काशी भोलेनाथ की नगरी है। यह तीनों लोकों से न्यारी है। काशी की बड़ी महिमा है। यह त्रिशूल के ऊपर बसी है। आज हम भगवान शिवजी पर चर्चा करेगें कि हमारे आर्षग्रन्थों में भगवान शिव का क्या स्वरूप है? शिव आदि योगेश्वर हैं। योग अनादि है। मनुष्य मात्र के लिए सुलभ किया तो भगवान शिव ने। शिव सच्चिदानन्द हैं।

**सत्य वस्तु है आतमा, मिथ्या जगत पसार।**
**नित्यानित्य विवेकिया, लीजै बात विचार।।**

सत्य है, शाश्वत है तो एक परमात्मा। हमारा चित्त जब उस सत्य से संयुक्त हुआ, सत्य और चित्त जहाँ एक हुआ तो तीसरी वस्तु प्रकट हो जाती है जिसका नाम है आनन्द। असीम आनन्द! शाश्वत आनन्द! यही सच्चिदानन्द का अर्थ होता है। कोई भी उस सत्य का स्पर्श करके शिवस्वरूप की, उस ज्योतिर्मय परमतत्त्व की अनुभूति प्राप्त कर सकता है जो केवल आनन्दमय है; दुःख है ही नहीं। ऐसा आनन्द कि-

**सुख-दुख से एक परे परमसुख, ता सुख रहा समाई।**

कहते हैं कि नर्मदा का हर कंकड़ शंकर अर्थात् सृष्टि में जन्मनेवाले हर जीव के हृदय में शिव है। प्रकृति के सीमाओं से अतीत, कल्याणतत्त्व है।

लेकिन वह शिव सोया हुआ है। अंगद जब बिगड़ा तो बोला– रावण! तू मुर्दा है। हम मुर्दों को क्या मारें? अन्यथा मैं ही तुम्हें मृत्युदण्ड दे सकता था। तो-

**कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा।।**
**सदा रोगबस संतत क्रोधी। बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी।।**
**तनु पोषक निंदक अघ खानी। जीवत सव सम चौदह प्रानी।।**

ये चौदह प्राणी शव के समान हैं। कौल माने वाममार्गी। कामबस– जो कामनाओं के अत्यन्त आधीन है। वाममार्गी- मुर्दा। कृपण है। जिसके पास वास्तव में वस्तु है और दे नहीं सकता, वह भी मुर्दा है। 'बिमूढ़'- एक तो मूढ़ होता है, एक विशेष रूप से मूढ़ है, अत्यन्त अज्ञान में है वह है मुर्दा। और वही है तू। तू भगवान को भी नहीं समझ पा रहा है।

रावण के पास सोने की लंका थी। विधाता के सृष्टि की हर समृद्धि रावण के पास थी। किन्तु अंगद ने कहा कि रावण! तू दरिद्र है, मुर्दा है। तुम्हें मारने से हमें केवल अपयश मिलेगा। तुम भगवान के हाथ से मरोगे तो तुम्हारा उद्धार होगा।

इतनी समृद्धि के बावजूद भी रावण! तू दरिद्र है। अति दरिद्र! किन्चित् भी जिसके हृदय में प्रभु का सुमिरन न हो, वो अति दरिद्र। '**अजसी**'– तुम्हारे पास कोई ऐसा यश नहीं, जो कुछ है अत्याचार है।

आदि शंकराचार्य की उम्र 18 वर्ष थी। जब मण्डन मिश्र के पास पहुँचे तो मण्डन मिश्र बिगड़ खड़े हुए, बोले- कुतो मुण्डी? तुम्हारी उम्र तो अभी बहुत कम है, संन्यास तो वृद्धों के लिए है, बच्चों के लिए नहीं। मण्डन मिश्र की उम्र थी पचहत्तर वर्ष। शंकराचार्य बोले– आप अभी बालक हैं, आप अभी अबोध हैं, मैं वृद्ध हूँ। वृद्ध वह होता है जो ज्ञानवृद्ध हो, अनुभूतिवृद्ध हो। ये आयु के दिन पूरे करके बाल सफेद कर लेने से कोई बुजुर्ग नहीं होता।

'**अति बूढ़ा**'- एक तो बूढ़ा होता है, वह मुर्दा ही है। किन्तु दूसरा जो जीवन काट ले गया गटरमस्ती में, आयु के क्षण पूरे हो गये फिर भी नहीं

चेता, वह भी मुर्दा है- 'अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा'।

**सदा रोगबस संतत क्रोधी। बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी।।**

**तनु पोषक निंदक अघखानी। जीवत सव सम चौदह प्रानी।।**

केवल तन पोषक, अपने आत्मा को अधोगति में ले जानेवाला निन्दक, जो पाप के खान हैं, पाप के परायण हैं।

जो आपको पूर्णत्व प्रदान कर दे, वो पुण्य कर्म कहलाता है। जो आपको पतन के गर्त की ओर ले चले वह पापकर्म कहलाता है। **'जीवत सव सम चौदह प्रानी'**- ये चौदह प्राणी जिन्दे अवश्य हैं किन्तु हैं लाश। केवल शव हैं।

जब तक दूषित संस्कार होगें तब तक जन्म-मृत्यु का पिण्ड नहीं छूटता। **'पुनरपि जननम् पुनरपि मरणम्, पुनरपि जननी जठरे शयनम्।'**- इस परिधि में भ्रमण करना पड़ता है इसलिए रावण! तुम मुर्दे हो।

वास्तव में शिव पहले शव थे। हमारी-आपकी तरह थे। इस प्रकार जो अचेत प्राणी हैं वह शव के समान हैं। जो आत्मा की जागृति से वंचित हैं, वह शव के समान हैं। हृदय में प्रेमरूपी पार्वती.... हृदय में, वृत्ति में प्रेम धाराप्रवाह जागृत हुआ तो इसको हिलायेगी-डुलायेगी, सचेत करेगी, भजन समझायेगी, ध्यान धरायेगी। कभी-कभी साधक ध्यान में अवश्य बैठा रहता है लेकिन मन गणित लगाता ही रहता है। चिदाकाश में मृतलोक का वातावरण खड़ा करके उनके बीच में टहलता रहता है। किन्तु यदि हृदय में प्रेम का प्रवाह है, तो विकारों को ढूँढ़ लेगा और उनको दूर करते हुए आपको ध्यानस्थ कर देगा। यदि प्रेम नहीं है तो भले ही आँख मूँदो, मन बहकता ही चला जायेगा। इसलिए पार्वती ने उस शव की स्थिति से उठाया, ध्यान में लगाया।

पार्वती ने देखा, शिव आकाश में मृतलोक की महिलाओं के साथ भ्रमण कर रहे थे अर्थात् ध्यान से चित्त हट गया। पार्वती ने मृतलोक की विभूतियों को तलवार से काट गिराया, उनका त्याग करवाया और पुनः ध्यान में लगा दिया। शनैः-शनैः शिव समाधिस्थ हो गये, शिवतत्त्व की स्थितिवाले हो गये।

शिव आपके हृदय में छिपा हुआ स्वरूप है। जो प्रकृति के सीमाओं से अतीत है, असीम तत्त्व है, उसका नाम शिव है। वह सबके घट में है, लेकिन पहले शव है। प्रेम के द्वारा जागृति, क्रमशः उत्थान और फिर स्थिति। यही शिव की परिभाषा भागवत में है।

शिव भूतनाथ थे। भूत माने जीवित प्राणी। इस सृष्टि में यदि जीवमात्र का कोई आधारस्थली है तो भगवान शिव, कल्याणतत्त्व में स्थित महापुरुष। शिव श्मशान में रहते हैं। लोगों ने दौड़कर श्मशान में कुटिया बना ली। शिव बाहर किसी श्मशान में नहीं रहता। आपके हृदय में भीड़ लगी है। कागभुसुण्डि को हजार जन्म लेना पड़ा सधुआई की शुरुआत के बाद। जड़भरत की मृग में जरा-सी आसक्ति हो गयी तो एक जन्म मृग का लेना पड़ा। न जाने कितनी योनियों में भ्रमण करना पड़े! ऐसी परिस्थिति में जब अभ्यास करते-करते-

**यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।**
**शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥ ( 12/17 )**

शुभ वे जो आपको अपने परमात्मा की ओर सहज स्वरुप की ओर ले चले, स्थिति दिला दे। अशुभ वे जो प्रकृति के गर्त में आपको भ्रमण कराये, आवागमन का चक्कर दिलवाये। शुभ और अशुभ - दोनों का जो परित्यागी है, वही भक्त मुझे प्रिय है। भजन करते-करते पहले अविद्या नष्ट होती है, आसुरी वृत्ति शान्त होती है। फिर आगे जब कोई सत्ता बची ही नहीं तो भजन करके किसको ढूँढ़ें? तब दैवी वृत्ति भी शान्त हो जाती है। यदि एक भी संस्कार बाकी है तो शिवस्वरुप की प्राप्ति नहीं। जैसा संस्कार है वैसा आपको जन्म लेना पड़ेगा। अन्तिम संस्कार भी जहाँ मिट गया तहाँ आपका हृदय, आपका अन्तःकरण श्मशान है; न शुभ न अशुभ है। इस अन्तिम संस्कार के निरोध के साथ जो स्थिति मिलती है, उसका नाम परमात्मा है, ज्योतिर्मय, सहज प्रकाशमय परमतत्त्व है। उसी का नाम शिव है।

इस स्थिति वाले महापुरुष ने जहाँ-जहाँ शरीर त्यागा, वहाँ-वहाँ शिवलिंग की एक पिण्डी रख दी क्योंकि उन महापुरुषों का उपदेश एक ही था कि

भजन एक परमात्मा का करना चाहिए। वह ज्योतिर्मय है, परमतत्त्व है। एक परमात्मा का चिन्तन करो। इतना ही शिवलिंग का अर्थ होता है। वह प्रकृति में रहते हुए प्रकृति से अतीत हैं। अन्तिम संस्कार भी मिट गया तो आपका धरातल, आपका अन्तःकरण भली प्रकार श्मशान है। उस वक्त प्रकृति की सीमाओं से अतीत शिव तत्त्व का दर्शन, स्पर्श और स्थिति। फिर किञ्चित भी प्राप्त होने योग्य वस्तु अप्राप्त नहीं रहती। वही कैवल्य पद है। महापुरुषों ने विविध दृष्टियों से उसे सम्बोधित किया है।

**– श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी जी शिव का स्वरूप बताते हैं-**

**सिवहि संभु गन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौरु सँवारा।**
**कुंडल कंकन पहिरे ब्याला। तन बिभूति पट केहरि छाला।।**
**ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। नयन तीनि उपबीत भुजंगा।।**
**गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव बेष सिवधाम कृपाला।।**
**कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। चले बसहँ चढ़ि बाजहिं बाजा।।**

शिव पहले शव थे और फिर हो गये महेश्वर, उपद्रष्टा अनुमति देने लगा, भरण-पोषण करने लगे। भगवान का भोजन है भजन। उसके द्वारा जो पार लगा, उसे स्वीकार किया, बदले में ईश की स्थिति प्रदान कर दी। शिव हैं आपके हृदय में। वह आपका ही छिपा हुआ स्वरूप हैं। केवल एक प्रभु की ओर आप अपना कदम बढ़ाना शुरू भर कर दें तो आप पाओगे कि कोई हमें अनुमति दे रहा है। आप पायेंगे, हम कहीं गिरना चाह रहे हैं तो उँगली पकड़कर उठा रहे हैं। एक दिन लक्ष्य पर पहुँच जाओगे।

**– शिव सद्गुरु हैं–**

**वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्।**
**यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते।।**

बोधमय, नित्य '**गुरुं शंकररूपिणम्**'- सद्गुरु जो शंकरस्वरुप हैं, मैं उनके चरणों की वन्दना करता हूँ, जिनके आश्रित हो जाने पर टेढ़ा चन्द्रमा भी सीधा, परमकल्याणकारी फल देने वाला होता है।

**'मन ससि चित्त महान'**- मन ही चन्द्रमा है। सबका मन टेढ़ा है। कभी काम में, कभी राग में, कभी द्वेष में, कभी भोगों में.... पता नहीं कहाँ-कहाँ भटकता रहता है। ये विकृत मन, टेढ़ा चन्द्रमा भी सीधा, परम कल्याणकारी फल देने वाला होता है।

शंकर आदि योगेश्वर थे। योग अनादि है किन्तु मनुष्य मात्र के लिये सुलभ किया तो भगवान शिव ने। और ये शिवतत्त्व की प्राप्ति भी सद्गुरु के चरणों के प्रताप से है।

**बंदउँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।**
**अमिअ मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू।।**
**सुकृति संभु तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती।।**
**जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किएँ तिलक गुन गन बस करनी।।**
**श्रीगुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती।।**
**दलन मोह तम सो सप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू।।**
**उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।।**
**सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।।**

**जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।**
**कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान।।**

पुण्यात्मा शंकरजी के शरीर में जो निर्मल विभूति (विभूति माने ऐश्वर्य) पायी जाती है, वह गुरु महाराज के चरण रज की देन है। शंकर पाप और पुण्य से परे होता है, और यहाँ पुण्यात्मा शंकर। वास्तव में आज का कोई पुण्यात्मा सद्गुरु के चरणों का आश्रय लेकर उस शिवतत्त्व को प्राप्त कर लेता है। शिव एक तत्त्व है। प्रकृति की सीमाओं से अतीत है, इसलिए शिवतत्त्व है।

शिव अवढरदानी हैं, जो चाहे कर दें। वे संसार से अतीत हैं। **'सकल लोक बस्ती में बसाये, आप बसे वीराने में।'** अन्त में सब कुछ प्रदान कर देने की क्षमता है, वह गुरु महाराज के चरण रज की देन है। आज का

पुण्यात्मा ही गुरु चरणों का आश्रय प्राप्त करता है। शनैः-शनैः प्रकृति की सीमाओं से अतीत शिव तत्त्व का दिग्दर्शन करता है, स्थिति पाता है।

आदि शंकराचार्य से एक शिष्य ने पूछा– **'कः पूजनीयं'**– भगवन्! संसार में पूजनीय कौन है? **'शिवतत्त्वनिष्ठः'**- जो शिवतत्त्व में स्थित है वह महापुरुष। और शंकर शिव तत्त्व में स्थित थे। जो भी स्थित हो जाये, वह महापुरुष अर्थात् शिव सबके लिये सुलभ है। सभी प्राप्त कर सकते हैं। शंकराचार्य ने अपना निर्णय दिया कि हमारी स्थिति क्या है?

**न मे मृत्युशंका न मे जातिभेदः**
**पिता नैव मे नैव माता न जन्मः।**
**न बन्धुर्नमित्रं गुरुर्नैव शिष्यः**
**चिदानन्दरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥**

न माता न पिता, न गुरु न शिष्य, चित्त परम आनन्दमयस्वरुप है। मैं कल्याणस्वरुप, कैवल्यस्वरुप, शिवमात्र शेष हूँ। शिव एक स्थिति है, योग की एक चरमोत्कृष्ट अवस्था है।

* एक समय समुद्र मंथन हुआ तो चौदह रत्न निकले जिसमें विष भी था - हलाहल विष। सब उसकी तेज से जलकर गिरने लगे, आकाशचारी गिरने लगे। सबने मिलकर भोलेनाथ से अनुरोध किया तो पी गये। न पेट में गया और न बाहर पृथ्वी पर रहा, विष कंठ में धारण कर लिया। वास्तव में महात्माओं के भीतर राग-द्वेष नहीं होता। लोगों के हित के लिए ही वे वाणी से ताड़ना देते हैं। यही कण्ठ में विष धारण करने का आशय है।

*** शिवरात्रि-**

रात्रि कई हैं जैसे- मोहरात्रि, कालरात्रि, शीतरात्रि, नवरात्रि और शिवरात्रि। शिवरात्रि में शिव और पार्वती का विवाह हुआ था।

नारद ने कहा- लड़की तो सुलक्षणा है! इससे माता-पिता यश प्राप्त करेंगे। इतना ही नहीं, अम्बा, अम्बिका, जगदम्बा की उपाधियाँ होंगी। संसार इसकी पूजा करेगा। इसके वर-स्थान में जरा-सा दोष है। वह है-

**अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना।।**

**जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।**
**अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख।।**

**( मानस, 1/67 )**

माँ-बाप को कोई ठिकाना नहीं। घर उसके पास है ही नहीं। संसार से उदास, जोगी, जटाधारी, नंगा भटकनेवाला - ऐसा स्वामी इसको मिलेगा।

इतना सुनते ही पार्वती की माता तो एकदम नाराज हो गयी, बोलीं– मैं कन्या को लेकर कुएँ में कूद जाऊँगी लेकिन विवाह नहीं करने दूँगी। नारद जी ने समझाया– जो वर के लक्षण बताये, वह शिव में पाये जाते हैं। कदाचित् शिव वर के रूप में मिलें तो दोष भी गुण ही कहलाते हैं।

पार्वती ने सपना देखा– हाथ में पुस्तक लिये गौर वर्ण दो विप्र आये, उपदेश किया कि राजकुमारी! तुम तपस्या करो तो शिव प्राप्त हो जायेंगे। तो कठोर हृदय करके माता-पिता ने तपस्या के लिये छुट्टी दे दी। हिमालय की चोटियों में पार्वती लगी तपस्या करने।

भगवान् शिव ने सप्तर्षियों से कहा– जरा ठोक बजाकर देखो, श्रद्धा कैसी?, भाव कैसा? तो सप्तर्षि पहले आये तो बोले– अरे! तुम राजकुमारी होकर यह क्या कर रही हो? शिव तो महादरिद्र है। जटाधारी, सर्प और बिच्छू, एक बूढ़ा बैल..... उस घर में कौन सुख पाओगी? हम तुम्हारे लिये बढ़िया वर चुनकर लाये हैं। बैकुण्ठ निवासी, लक्ष्मीपति विष्णु। ऐश्वर्य और भोग छाया रहेगा। शंकर तो अवगुणों की पराकाष्ठा हैं। तब पार्वती ने कहा-

**महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम।**
**जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम।।**

माना कि शंकर सारे अवगुणों की खान हैं और विष्णु सारे गुणों की पूँजी हैं लेकिन जिसका मन जिसमें रम गया, उसका उसी से प्रयोजन है। यदि वर-कन्या देखे बिना नहीं रहा जाता, अगुवाई किये बिना नहीं रहा जाता तो

और किसी घर में चले जाइए। सप्तर्षियों ने मन ही मन प्रणाम किया और चले गये।

सप्तर्षि एक बार फिर लौटकर आये, वे बोले– तुम तपस्या क्यों कर रही हो? उस पगले के लिये इतनी तपस्या की क्या जरूरत है? पार्वती बोली– नारद जी का उपदेश है। वे बोले– वह महाकपटी है, महाधूर्त है। नारद का उपदेश सुनकर आज तक क्या किसी का घर बसा है?

**दच्छसुतन्ह उपदेसेन्हि जाई। तिन्ह फिरि भवनु न देखा आई।।**
**चित्रकेतु कर घरु उन घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला।।**
**नारद सिख जे सुनहिं नर नारी। अवसि होहिं तजि भवनु भिखारी।।**

हिरणाकश्यप का घर नारद ने बर्बाद कर दिया। दक्ष प्रजापति के दस हजार राजकुमारों को एक साथ जंगल का रास्ता पकड़ा दिया, फिर उन्होंने लौटकर घर का मुँह कभी नहीं देखा। पार्वती बिगड़ खड़ी हुईं कि-

**तजउँ न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिं सत बार महेसू।।**
**गुर कें बचन प्रतीति न जेही। सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही।।**

नारद का उपदेश मैं नहीं त्याग सकती। सौ बार शंकर जी स्वयं आकर कहें, तब भी नहीं त्याग सकती। क्यों? क्योंकि गुरु के वचनों में जिसको विश्वास नहीं, उसके जीवन में सपने में भी न सुख है, न समृद्धि है, न परम गति है। वह सब ओर से भ्रष्ट हो जाता है।

सप्तर्षि बोले– शंकर जी ने कामदेव को जला दिया। ऐसे पति को लेकर क्या करोगी? शंकर तो एकदम मुर्दा! तब पार्वती फिर बिगड़ी कि–

**तुम्हरें जान कामु अब जारा। अब लगि संभु रहे सबिकारा।**
**हमरें जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी।।**
**जौं मैं सिव सेये अस जानी। प्रीति समेत कर्म मन बानी।।**
**तौ हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा।।**

आपकी निगाह में आज शंकरजी ने काम जलाया है। अब तक क्या भोगी थे?, रागी थे? हमारी दृष्टि में शिव सदा योगी, अकाम, अभोगी हैं।

यही समझकर हमने शिव की आराधना की है, यही समझकर हमने वरण किया है। यदि हमार प्रण सच्चा है तो भगवान मेरे प्रण को अवश्य पूरा करेंगे।

वास्तव में शिव-पार्वती का विवाह किसी लड़का-लड़की का शादी-विवाह नहीं है। शिव आदि योगेश्वर थे। योग अनादि है लेकिन मानवमात्र के लिये सुलभ कराया तो भगवान शिव ने। शिव एक सद्गुरु हैं, आदि सद्गुरु। वे अकाम हैं, अभोगी हैं, सदा योगी हैं, पूर्ण हैं। ऐसे महापुरुष से यदि आप सम्बन्ध करना चाहते हैं तो प्रेम ही पार्वती है। प्रेममयी वृत्ति को सद्गुरु स्वीकार कर लेते हैं।

**हमरें जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी।।**

ऐसे आदि सद्गुरु शिव के साथ तद्रूप होने के लिये सक्षम कौन है? केवल पार्वती और वही ऐसे पति के लिये कार्य करेगा। संसारी भला क्यों कोशिश करेगा? तो आप हम, कोई भी सद्गुरु का गुरूत्व देखना चाहते हैं, प्राप्त करना चाहते हैं तो अपने हृदय में प्रेम की जागृति आवश्यक है।

* भगवान शिव ने निर्णय दिया- एक बार देवता और पृथ्वी सब घबरा गये, ब्रह्मा के पास जाकर गिड़गिड़ाने लगे कि इस रावण से छुटकारा कैसे हो? ब्रह्मा बोले– यह तो परमात्मा ही कर सकता है। तो पूछा– प्रभु रहते कहाँ हैं?

**पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई।।**

किसी ने कहा– वो बैकुंठ में रहता है, चलो वहीं चले। दूसरे ने कहा– नहीं, तू क्या जाने! वो क्षीर-सागर में रहते हैं।

**तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ।।**

भगवान शिव कहते हैं– मैं उस समाज में था लेकिन बताने का अवसर ही नहीं मिला। जहाँ अवसर मिला तो हमने एक वचन कहा कि-

**हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।।**

**अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।।**

भगवान कण-कण में व्याप्त हैं। **'प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।'** बैकुण्ठ में नहीं, क्षीर-सागर में नहीं, वे यहाँ भी विद्यमान हैं। उनको ढूँढ़ निकालने का उपाय केवल प्रेम है। हमने कहीं किताब में नहीं पढ़ा, कान से नहीं सुना; जाना है, उसे पहचाना है। वे प्रेम से प्रकट होते हैं।

पेड़ में सारे फर्नीचर विद्यमान हैं, कुछ भी बना लो। माचिस की तिली बनाओ, चाहे सोफासेट। लेकिन पेड़ काट के देखो, कुछ नहीं मिलेगा। दूध के हर बूँद में मक्खन है लेकिन नहीं मिलेगा, जब तक कि एक निश्चित प्रक्रिया के द्वारा अलग ना कर लें। तो परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है, आपके हृदय में हैं, ऐसा हमने जाना है।

प्रेममयी प्रवृत्ति ही पार्वती है। आपकी वृत्ति में जब प्रेम प्रवाहित हो जाय तो कोई प्रलोभन नहीं कि आपको अलग कर दे। तो सद्गुरु के वचनों में विश्वास, इष्ट के प्रति दृढ़ आस्था, महान कष्ट आने पर भी जो अपनी टेक से अलग न हो। आपकी वृत्ति में जब प्रेम प्रवाहित है, तो ये सब क्षमता आ जाती है, वही एक दिन शिव तत्त्व को प्राप्त करता है। जो प्रकृति की सीमाओं से अतीत है, असीम तत्त्व है इसलिए उनका नाम शिव है। शिव आदि योगेश्वर हैं।

* सभी प्राणी मोह में आक्रान्त डूबे हुए हैं, सोये हुए हैं।

**मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥**

सृष्टि सोई हुई है। आपकी वृत्ति में जब प्रेम प्रवाहित हुआ तो हिलेगा-डुलेगा, उत्थान होगा और शिवतत्त्व की स्थिति की उपलब्धि करा देगा।

शिव सदैव श्मशान में रहते हैं। हृदय में एक भी संस्कार बाकी है तो उस संस्कार के अनुसार आपको जन्म लेना पड़ेगा। श्मशान = अन्तिम संस्कार का भी अन्त। अन्तिम संस्कार का मिट जाना, (जब संस्कार ही नहीं तो जन्म आपको कौन देगा?) ऐसा जब हृदय का धरातल हो जाता है, इस क्षण के साथ शिव तत्त्व की उपलब्धि होती है। इसलिए शिव सदा श्मशान में रहते हैं।

शंकर और पार्वती का विवाह। ये सम्बन्ध सबके लिये है। सभी उस शिवतत्त्व को प्राप्त कर सकते हैं। 'शंका अरि' से शंकर। जो शंकाओं से अतीत है, शंकाओं से अलग जो स्थिति है। 'स्वयंभू'- जो स्व-स्वरूप की स्थिति वाला है। ये शिव के ही नाम हैं।

## * शिवरात्रि क्या है?

**या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।**
**यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥ ( 2/69 )**

सम्पूर्ण भूत-प्राणियों के लिये वह परमात्मा रात्रि के तुल्य है; क्योंकि दिखायी नहीं देता, न विचार ही काम करता है इसलिये रात्रि सदृश है। उस रात्रि में संयमी पुरुष भली प्रकार देखता है, चलता है, जागता है; क्योंकि वहाँ उसकी पकड़ है। योगी इन्द्रियों के संयम द्वारा उसमें प्रवेश पा जाता है। जिन नाशवान् सांसारिक सुख-भोग के लिये सम्पूर्ण प्राणी रात-दिन परिश्रम करते हैं, योगी के लिये वही निशा है।

**रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥**

जो योगी परमार्थ-पथ में निरन्तर सजग और भौतिक तृष्णाओं से सर्वथा निःस्पृह होता है, वही उस इष्ट में प्रवेश पाता है। वह रहता तो संसार में ही है; किन्तु संसार का उस पर प्रभाव नहीं पड़ता। और ठीक गीता का ही अनुवाद है रामचरितमानस कि-

**एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥**

जगत एक रात्रि है। इस जगतरुपी रात्रि में जोगी जागता है। भला जागे हुए की पहचान क्या है?

**नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी॥**

विधाता का जहाँ तक प्रपंच है उससे विरति अर्थात् अलग-थलग हो जाते हैं।

**जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥**

इस जीवात्मा को जगा हुआ तब जानना चाहिए, जब सम्पूर्ण विषयों से वैराग्य उत्पन्न हो जाय। संसार एक रात्रि है जिसमें सब लोग निश्चेष्ट पड़े हुए हैं।

**मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा।।**

मोह में निश्चेष्ट रात-दिन दौड़-धूप कर रहे हैं, मात्र स्वप्न देखते हैं। किन्तु जब प्रेम का प्रवाह हमारी वृत्ति में आया, उत्थान होते-होते जब परमात्मा का स्पर्श पाया, जहाँ विलय पाया, शिवतत्त्व की निष्ठा आयी तो–

**'ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।'** (ईशावास्योपनिषद्, 1)- सर्वत्र ईश्वर का वास है, लेश मात्र भी कहीं जगत है ही नहीं। प्रकृति पुरुषत्व में परिवर्तित हो गयी।

**सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना।।**

उस प्रेम का प्रवाह इतना उत्थान होते-होते, परीक्षाओं को पार करते हुए जहाँ शिव का स्पर्श किया..... प्रकृति के सीमाओं से अतीत, शंकाओं से मुक्त जहाँ उस निर्लेप, उस अविनाशी तत्त्व का स्पर्श किया, इसके साथ ही न स्वर्ग, स्वर्ग के रुप में रह जाता है, न नरक, नरक के रुप में रह जाता है जिससे हम भयभीत हों; और न बैकुण्ठ, बैकुण्ठ के रुप में रह जाता है जिसकी हम कामना करें। जहाँ दृष्टि पड़ी, अपने आराध्य देव को खड़ा पाया।

**नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं।।**

ये सब दूरी तय होती है नाम के प्रभाव से। नाम यदि लेते बन गया, अथाह भवसागर सूख जाता है। मानस में है–

**सुधाबृष्टि भै दुहु दल ऊपर। जिए भालु कपि नहिं रजनीचर।।**

अमृत की वृष्टि होते ही बंदर-भालू जीवित हो गये, असुर नहीं जीवित हुए। आखिर वो गये कहाँ?

**रामाकार भये तिन्ह के मन। मुक्त भए छूटे भव बंधन।।**

वे सब राम के स्वरुप में परिवर्तित हो गये क्योंकि मरते समय सब

राम नाम को लेकर मरे थे। **'राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।'** जब ये राम के आकार में परिवर्तित हो जाती हैं, **'बिनु गोपाल ठौर नहिं कतहूँ नरक जात धौं काहें!'** तहाँ शिव की रात्रि हो जाती है, ये जगत परमात्मा का धाम हो जाता है। उस पुरुष के लिये रंचमात्र भी कहीं गड्ढा नहीं है, जहाँ फिसलकर वो गिर जाये, डूब जाय अर्थात् शिव एक चरमोत्कृष्ट अवस्था है, योग-साधना का परिणाम है। तो योगेश्वर भगवान शिव। वो आदि योगेश्वर शिव काशी में वास करते हैं। उस शिव तत्त्व को प्राप्त करनेवाला हर महापुरुष शिव तत्त्वनिष्ठ होता है। जहाँ भी शरीर छूटा, एक पिण्डी गाड़ दिया।

ये पिण्डी क्या है? महात्मा किसी के दरवाजे-दरवाजे जाकर उपदेश नहीं कर सकते। किसी जनपद में आये तो उनको उपदेश किया। उनके लिये परमात्मा की एक पाठशाला, एक पवित्र स्थान बना दिया। उसका नाम है ज्योतिर्लिंग, शिवलिंग।

लिंग माने होता है चिन्ह! स्कूल में पढ़ाया जाता है स्त्रीलिंग = जिसमें स्त्रियों के चिन्ह पाये जाते हैं। नपुंसकलिंग = जिसमें नपुंसकता के चिन्ह पाये जाते हैं। उसी प्रकार ज्योतिर्लिंग = सहज प्रकाशस्वरुप! गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं-

**न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।**
**यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥ ( 15/6 )**

ज्योतिर्मय परमात्मा जो स्वयं प्रकाश स्वरुप है, जिसके अंशमात्र से सूर्य-चन्द्रमा भी रोशनी पाते हैं। ज्योतिर्मय परमात्मा का यह चिन्ह है, प्रतीक है। शिवलिंग का केवल इतना ही अर्थ होता है कि परमात्मा एक है, ज्योतिर्मय सत्ता एक है, उसके प्रति श्रद्धा लाओ।

कालान्तर में युग बीत गये तो भ्रान्तियाँ हो गयी। कोई कहता है, शिवलिंग इन्द्रिय का चिह्न है। ऐसा कुछ नहीं है। वो महापुरुषों ने एक चिह्न बनाया कि एक परमात्मा, एक ईश्वर। **'ब्यापक एकु ब्रह्म अबिनासी।'**

भगवान कण-कण में व्याप्त है लेकिन है एक। एक से सवा कभी हुआ ही नहीं। वो बृहद है इसलिए ब्रह्म। अविनाशी है, उसका विनाश हो ही नहीं सकता। **'सत चेतन घन आनँद रासी।'** परम सत्य, असीम आनन्द की राशि। भला वह भगवान रहता कहाँ है?

**अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी।।**

ऐसा परमात्मा सबके हृदय में वास करता है। **'अछत'**... कलेजा काट के ऑपरेशन करो, अलग करके फेंक दो, वो जिन्दा रहेगा, उसको चोट नहीं लगेगी। **'अबिकारी'**- आप सियार, घोड़ा, गधा कुछ भी खाओ, आपके खान-पान से कोई प्रयोजन नहीं। वह द्रष्टा के रुप में है, हृदय में निवास करता है। 'ब्यापक' है किन्तु है एक। तो भला उसको ढूँढ़े कैसे?

**नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें।।**

पहले तो नाम का निरूपन करो कि नाम है किस प्रकार? निरूपन माने निराई-गुड़ाई। किसान प्रतिकूल घास को निकालकर फेंक देता है और अनुकूल फसल को बचा लेता है। पहले निरूपन करो कि नाम का किस प्रकार जप किया जाय? क्योंकि–

**राम नाम में अन्तर है। कहीं हीरा है कहीं पत्थर है।।**

इतना बड़ा अन्तर। हम कहीं कंकड़ों में न उलझ जाए! पहले उसका निराकरण करो और जब समझ काम कर जाये, यत्न करो। तुम उसे पा जाओगे, हृदय वाला भगवान प्रकट हो जायेगा। तो- ईश्वर एक है, ब्रह्म एक है, ज्योतिर्मय तत्त्व एक है। परमानन्देश्वर.... परम आनन्द देने वाला ईश्वर एक है। एक परमात्मा का बोध कराता है, उस पवित्र स्थान पर जाकर हमें प्रार्थना करनी चाहिए। शिवलिंग यह पढ़ाता है कि भगवान एक हैं। इसके अलावा शिवलिंग का कोई प्रयोजन नहीं।

मंदिर ईश्वर का आध्यात्मिक पाठशाला होता है। मन्दिर में शान्त चित्त से बैठकर भजन करना चाहिए। सब जगह भजन में मन भी तो नहीं लगता। ताकि बच्चा-बच्चा एक परमात्मा की आध्यात्मिक विद्या से आप्लावित हो जाय,

संस्कारी हो जाय इसलिए मन्दिरों का निर्माण महापुरुषों के द्वारा हुआ। कालान्तर में जब कभी वो भजन के प्रशस्त पथ पर आ जायेगा तो फिर मन्दिरों में नहीं, अपने हृदय में बैठकर ढूँढ़ेगा। सुतीक्ष्ण ने हृदय में बैठकर ढूँढ़ा, अत्रि ने हृदय में बैठकर ढूँढ़ा, अगस्त्य ने हृदय में बैठकर ढूँढ़ा। कोई ऐसा महापुरुष नहीं मिला है जिसका भजन करने के लिये अलग से मन्दिर बना हो। बुद्ध पागलों की तरह जाकर बैठे पीपल के नीचे.... महावीर एक झाड़ी में.... गुरु महाराज भी एकान्त जंगल में.... वहाँ उन्हें उपलब्धि हो गयी। जब कभी किसी ने पाया तो हृदय देश में। तो हृदय को संसार के सम्बन्ध से निर्लेप बनाने के लिए एकान्त सेवन कोई करता नहीं। जब प्रभु हृदय से रथी हो जाते हैं तो करुणा करके, दया करके साधक को ले चलते हैं और भजन करवा लेते हैं।

**तुलसिदास ( मन ) बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै।**

यह अयुक्त मन तभी वश में होता है जब प्रभु प्रेरक के रुप में स्वयं परमात्मा उतर आए। आत्मा से अभिन्न होकर खड़े हो जाय, हमारी रोकथाम करने लगें। बस समर्पण के साथ उस हृदयस्थ ईश्वर की शरण जाना होगा।

* **बाल्मीकि के उपदेश–** बाल्मीकि ने कहा-

**पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।**
**जहँ न होहु तहँ देहुँ कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ॥**
**सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता॥**
**जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥**
**भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥**
**लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥**
**निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी॥**
**तिन्ह कें हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक॥**
**जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।**
**मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु॥**

भगवन्! उनका हृदय आपका घर है। इसलिये कुछ मत छोड़ो। जो पकड़ना है, जिसके लिये दुर्लभ मनुष्य शरीर मिला है, उसे पकड़ भर लो तो हम अपने रास्ते पर हैं, धर्म पर हैं।

जो शाश्वत है, अविनाशी है, जिनके तेज के अंशमात्र से सृष्टि का सृजन-पालन-परिवर्तन होता रहता है, जो सबको धारण किये हुए है, वही है धर्म। जो उसके लिये श्रद्धा समर्पण करता है वो है धार्मिक। सद्गुरु के आदेश का पालन है धर्माचरण। इसके लिये संघर्ष करना पड़ता है।

**आगि आँच सहना सुगम सुगम खड्ग की धार।**
**नेह निबाहन एक रस महाकठिन व्यवहार॥**

आग में कूद जाना आसान है। बहुत सी बालाएँ कूद जाती है। तलवार की नोंक पर लड़कर जूझ जाना आसान है- **'सुगम खड्ग की धार'**, किन्तु **'नेह निबाहन एक रस, महाकठिन व्यवहार।'** यही पार्वती ने किया, एक दिन शिव को पा गयी। शिव को पाने पर शिव अलग नहीं रह गये। भगवान शिव 'अर्धनारीश्वर' हैं। जो पार्वती है वही शिव है। जो शिव है वही पार्वती है। भगवान जब अपनाते हैं तो अपने में समाहित कर लेते हैं, अपना स्वरूप दे देते हैं। यदि परमात्मा को पाना है तो पहले किसी शिव तत्त्वनिष्ठ सद्गुरु को पकड़ो।

रामचरितमानस में भगवान् राम ने बताया है। भगवान् राम की प्राप्ति के लिये भगवान शिव की भक्ति करनी पड़ेगी।

**सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं। रामहि ते सपनेहुँ न सोहाहीं॥**

शिव के चरण-कमलों में जिसकी प्रीति नहीं है, वह भगवान को स्वप्न में भी अच्छे नहीं लगते। भगवान उनकी तरफ देखना भी नहीं चाहते हैं।

**बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू॥**

बिना छल का, कपट से रहित, मन-कर्म-वचन से **'बिस्वनाथ'**- (विश्व के जो नाथ हैं; सेवक नहीं हैं स्वामी हैं) उस शिव के चरण-कमलों में प्रीति

– रामभगत का केवल इतना ही लक्षण है। तो हमने प्रीति तो मन-कर्म-वचन से विश्वनाथ के चरणों में किया और भक्ति पूर्ण हो गयी भगवान् रामजी की।

**जेहिं पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी।।**

सत, रज, तम त्रिगुणमयी प्रकृति है। तीन मंजिला माया का महल - तामसी..... मध्यम राजसी.... और सात्त्विक देवलोकपर्यन्त इन त्रिगुणमयी प्रकृति को पार करके जो त्रिगुणातीत हैं वो त्रिपुरारी। प्रकृति पार है वो त्रिपुरारी। तीनों गुणों को अरि माने काटना.... समाप्त करके जो स्थित हैं ऐसा सद्गुरु कृपा न करे तो वह मेरी भक्ति नहीं प्राप्त कर सकता है। इसलिए-

**संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी।।**

शंकाओं से अतीत उन भगवान् शिव से जो विमुख है और मेरी भक्ति चाहता है वह नरकगामी है, मूढ़ है; बेचारे की बुद्धि बहुत हल्की है। किन्तु हम बहुत शिवप्रिय हों और भगवान को न चाहें तो? तब भी धोखा!

**संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।**
**ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास।।**

शंकर का तो प्रिय, सदगुरु की शरण में लेकिन उनकी शरण जाके (हम सदगुरु की शरण क्यों जाते हैं? प्रभु को प्राप्त करने के लिए!) उन प्रभु को हम नहीं चाहते **'मम द्रोही'....** और **'सिव द्रोही मम दास'**- और कहता है- भाई! हमारा गुरु तो परमात्मा है। राम का तो दास है और शिव का द्रोही। **'ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास'**- वे लोग एक कल्प माने एक जनम घोर नरक में वास करते है। ईश्वर-पथ में बीज का नाश नहीं है। सर्वथा नष्ट तो नहीं होंगे लेकिन एक कल्प अवश्य नरक में वास करेंगे। कल्प माने काया का परिवर्तन। सर्वथा नाश नहीं होगा।

एक गोपनीय वार्ता आज तक रहस्य में दबी रह गयी। भगवान राम कहते हैं- वह मेरा सिद्धान्त है, मुझे पाने की विधि है, सबको हाथ जोड़कर कहता हूँ। भला उस परमात्मा को हाथ जोड़ने की क्या आवश्यकता थी? बात

ही कुछ अटपटी है। हठात् विश्वास भी तो नहीं होता कि हमारी तरह ये भी खाते-पीते, उठते-बैठते हैं तो महापुरुष कैसे हो सकते हैं? इसलिये परमात्मा राम ने बल देकर कहा-

**औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।**
**संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥**

जो शंकाओं से अतीत है, शिवतत्त्वनिष्ठ है, उसके भजन के बिना मेरी भक्ति कोई प्राप्त नहीं कर सकता। तो यदि हमें परमात्मा को पाना है तो शंकर एक माध्यम है, सद्गुरु एक माध्यम है।

* पंचवटी में भगवान् श्रीराम जी से लक्ष्मण ने कहा- प्रभु! सुख का स्रोत क्या है? भगवान राम ने कहा- लक्ष्मण!

**भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होइँ अनुकूला॥**

अनुपम सुख की मूल तो भक्ति है। लक्ष्मण बोले– भगवन्! प्रदान कर दें। तो **'मिलइ जो संत होइँ अनुकूला।'**- मिलेगी तब जब संत अनुकूल हों। जो भक्ति शिव दे रहे हैं, वहीं भक्ति संत दे रहे हैं।

फिर बताया की शिव के तन में जो विभूति है, वह सद्गुरु के चरण रज की देन है। सन्त जो संसृति का अन्त कर दे, वे अनुकूल न हो तो भक्ति नहीं। शंकर अनुकूल नहीं तो भक्ति नहीं। आज जिन्हें हम तत्त्वदर्शी, महापुरुष, परमहंस जो कुछ भी कहते हैं, पूर्ववैदिककाल में वो शिव थे, स्वयंभू थे, शंकर थे, संत थे। ये पर्यायवाची शब्द हैं।

यदि परमात्मा परम धाम है तो सद्गुरु ही साधना की जागृति, पूर्तिपर्यन्त पथ है, परमात्मा में प्रवेश का मेन गेट है, मुख्य द्वार है इसलिये- **'संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।'**

तो शंकर आदि योगेश्वर हैं। शिव सबके पास हैं। ऐसे प्रकृति पार स्थितिवाले महापुरुषों के बाहर भी संसार विषयरुपी विष नहीं होता, और भीतर भी नहीं होता, लेकिन गले में होता है। गले से वो सांसारिक बाते करते रहते

हैं। क्योंकि उनके पास सांसारिक लोग ही टकराते हैं, उनका बोध कराने के लिये। शंकर जी के भक्त सभी थे। भूतनाथ- भूत माने होता है प्राणी! जो भी प्राण धारण करके जिन्दा है, उसे भूत कहते हैं अर्थात् जीवित प्राणी।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं-

**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।**
**भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ ( 18/61 )**

अर्जुन! वह ईश्वर सम्पूर्ण भूत-प्राणियों के हृदय-देश में निवास करता है। बहुत से लोग भूत माने मरने के बाद जो कल्पना करते हैं वह। वास्तव में भूत माने जीवित प्राणी, प्राण धारण करने वाला। हर प्राणधारी के हृदय में ईश्वर वास करता है। इतना समीप हृदय में है तो लोग देखते क्यों नहीं? बोले– मायारूपी यन्त्र में आरूढ़ होकर भ्रमवश लोग भटकते ही रहते हैं इसलिये नहीं देख पाते। अर्थात् हृदयस्थित ईश्वर की प्राप्ति के लिये प्राणियों का यदि कोई आधार है, रक्षक है तो वह है शिव। तो ईश्वर सबके हृदय में रहते हैं तो शरण किसकी जाये?-

**तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।**
**तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ ( 18/62 )**

उस हृदयस्थित ईश्वर की शरण जाओ। '**सर्वभावेन**'- सम्पूर्ण भाव से जाओ। थोड़ा भाव संकटमोचन, थोड़ा भाव पशुपतिनाथ, थोड़ा मैहर देवी..... हम तो बारह आना लीक हो गये। पूर्ण श्रद्धा से जाओ। मान लें, हमने सारी मान्यताएँ तोड़ी और शरण चले ही गये तो लाभ क्या? कहते हैं- '**तत्प्रसादात्परां शान्तिं**'- तुम परम शान्ति प्राप्त कर लोगे, '**स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्**'- उस स्थान को, उस घर को पा जाओगे जो शाश्वत है, अजर-अमर है। सदा तुम्हारा घर रहेगा, सदा तुम्हारा जीवन रहेगा। जिसके बाद जीवन में कभी अशान्ति नहीं होगी। इसलिए सबको भगवान के एक नाम का जाप, भजन-संकीर्तन करना चाहिए।

भगवान को खुश करने के लिये घर छोड़ने की आवश्यकता नहीं। काम, क्रोध, मोह, लोभ.... कुछ मत छोड़ो। एक फैक्टरी और खोल लो, कोई फर्क नहीं। किन्तु एक बात याद रखो। जो एक है, अविनाशी है, घट-घट का वासी है, उस परमात्मा के प्रति श्रद्धा स्थिर करो; और प्रभु का जो बोध कराता है, दो-ढ़ाई अक्षर का एक नाम ॐ अथवा राम को चुन लो। भगवान का तो कोई नाम ही नहीं है। भगवान् अनाम हैं। ये उनके सम्बोधन हैं। जो उनका बोध कराता है, उस नाम को चुनो और उसका जाप करो। चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाना-खाते, पानी पीते, रोटी-बनाते, खुरपी चलाते जीवन के हर मोड़ पर नाम याद आया करे।

**!! बोलिये श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय !!**

# 'श्रीमद्भगवद्गीता' की साधना

**उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।**
**परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः।। (१३/२२)**

वह पुरुष **'उपद्रष्टा'**– हृदय-देश में बहुत ही समीप, हाथ-पाँव-मन जितना आपके समीप है उससे भी अधिक समीप द्रष्टा के रूप में स्थित है। उसके प्रकाश में आप भला करें, बुरा करें, उसे कोई प्रयोजन नहीं है। वह साक्षी के रूप में खड़ा है। साधना का सही क्रम पकड़ में आने पर पथिक कुछ ऊपर उठा, उसकी ओर बढ़ा तो द्रष्टा पुरुष का क्रम बदल जाता है, वह **'अनुमन्ता'**– अनुमति प्रदान करने लगता है, अनुभव देने लगता है। साधना द्वारा और समीप पहुँचने पर वही पुरुष **'भर्ता'** बनकर भरण-पोषण करने लगता है, जिसमें आपके योगक्षेम की भी व्यवस्था कर देता है। साधना और सूक्ष्म होने पर वही **'भोक्ता'** हो जाता है। **'भोक्तारं यज्ञ तपसाम्'**– यज्ञ, तप जो कुछ भी बन पड़ता है, सबको वह पुरुष ग्रहण करता है। और जब ग्रहण कर लेता है, उसके बाद वाली अवस्था में **'महेश्वरः'**– महान् ईश्वर के रूप में परिणत हो जाता है। वह प्रकृति का स्वामी बन जाता है; किन्तु अभी कहीं प्रकृति जीवित है तभी उसका मालिक है। इससे भी उन्नत अवस्था में वही पुरुष **'परमात्मेति चाप्युक्तो'**– जब परम से संयुक्त हो जाता है, तब परमात्मा कहलाता है। इस प्रकार शरीर में रहते हुए भी यह पुरुष आत्मा **'परः'** ही है, सर्वथा इस प्रकृति से परे ही है। अन्तर इतना ही है कि आरम्भ में यह द्रष्टा के रूप में था, क्रमशः उत्थान होते-होते परम का स्पर्श कर परमात्मा के रूप में परिणत हो जाता है।

**– 'श्रीमद्भगवद्गीता' भाष्य 'यथार्थ गीता' से साभार**


**श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट**

न्यू अपोलो स्टेट, गाला नं- ५ और ११, मोगरा लेन (रेलवे सब वे के पास) अंधेरी (पूर्व), मुंबई - ४०००६९. फोन - (०२२) २८२५५३००,भारत.

ई-मेल – contact@yatharthgeeta.com वेबसाइट – www.yatharthgeeta.com